गीता अध्याय ११

समापन अंक

यु क्रां द

अगस्त १९७४

मूल्य : १.२५ रु०

भगवान रजनीश-साहित्य

१ ताओ उपनिषद् ४०-००
२ गीता-दर्शन (अध्याय६) ३०-००
३ महावीर मेरी दृष्टि में ३०-००
४ महावीर वाणी भाग १ ३०-००
५ महावीर वाणी भाग २ ३०-००
६ जिन खोजा तिन पाइयां २०-००
७ मैं मृत्यु सिखाता हूं २०-००
८ इशावास्योपनिषद् १५-००
९ निर्वाणोपनिषद् १५-००
१० गीता-दर्शन अध्याय: ७ १२-००
११ प्रेम है द्वार प्रभु का ९-००
१२ घाट भुलाना बाट बिनु ७-००
१३ नव-संन्यास क्या ? ७-००
१४ समुन्द समाना बुंद में ९-००
१५ सूली ऊपर सेज पिया की ७-००
१६ सत्य की पहली किरण ६-००
१७ मैं कहता आंखन देखी ६-००
१८ क्रांति बीज ६-००
१९ अन्तर्वीणा ६-००
२० ढाई आखर प्रेम का ६-००
२१ प्रभु की पगडंडियां ६-००
२२ संभावनाओं की आहट ६-००
२३ संभोग से समाधि की ओर ६-००
२४ प्रेम के फूल ५-००
२५ अस्वीकृति में उठा हाथ ५-००
(भारत-गांधी और मेरी चिंता)
२६ ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया ५-००
२७ साधना-पथ ५-००
२८ अन्तर्यात्रा ५-००
२९ सत्य की खोज ५-००
३० मिट्टी के दिए ५-००
३१ मुल्ला नसरुद्दीन ५-००
३२ गहरे पानी पैठ ७-००
३३ काम-योग धर्म और गांधी ५-००
३४ समाजवाद से सावधान ४-००
३५ शून्य के पार ४-००
३६ पथ के प्रदीप ६-००
३७ शांति की खोज ३-५०
३८ मैं कौन हूं ३-००
३९ शून्य की नाव ५-००
(सत्य का सागर शून्य की नाव)
४० नए संकेत २-००
४१ पथ की खोज २-००
(सिंहनाद का नया संस्करण)
४२ अज्ञात की ओर २-००
४३ सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण २-००
४४ क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया १-५०
४५ ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान १-५०
४६ ज्योतिष : अर्थात अध्यात्म १-५०
४७ जनसंख्या विस्फोट : समस्या और समाधान १-५०
४८ ध्यान एक वैज्ञानिक दृष्टि १-५०
४९ प्रगतिशील कौन १-५०
५० प्रेम और विवाह १-५०
५१ विद्रोह क्या है ? १-५०
५२ मेडीसिन और मेडीटेशन १-२५
५३ सारे फासले मिट गए १-२५
५४ अमृत कण १-००
५५ अहिंसा दर्शन १-००
५६ अज्ञात के नए आयाम १-००
५७ धर्म और राजनीति १-००
५८ बिखरे फूल १-००
५९ मन के पार १-००
६० युवक और यौन १-००
६१ कुछ ज्योतिर्मय क्षण १-००
६२ अवधिगत संन्यास ०-३०
६३ क्रांति की नई दिशा : नई बात (नारी और क्रांति) ०-३०
६४ क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-सन्त) ०-३५
६५ संस्कृति के निर्माण में सहयोग (जीवन जागृति केन्द्र : क्या, क्यों, कैसे ?) ०-३०

भगवान रजनीश की सृजनात्मक युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युक्रांद

वर्ष - ६ अंक - २

मूल्य एक प्रति : १-२५ रु.
,, वार्षिक : १५-०० रु.

अगस्त १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

- अरविन्दकुमार
- डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
- 'आकुल' राजेन्द्र
  (साधु आनन्द 'आकुल')
- आलोक पाण्डे

☐ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

युक्रान्द

अगस्त ७४

★

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ३ : अमृत-शिखा : मृत्यु का बीज
(भगवान श्री की बोध-कथाओं से)

: ५ : समाधि साधना शिविर : १० जुलाई से २० जुलाई ७४
झलक : डा० उर्मिला, जबलपुर

: १५ : कृष्ण और गीता
(अध्याय ११, ग्यारहवां प्रवचन)

: ४६ : एक विचार : दो विचारक
प्रस्तोता : साधु आलोक आनन्द, बम्बई

गीत : काव्य

: ४ : दो कणिकाएं

स्वामी अगेह भारती, जबलपुर
कु० संध्या मेहता, इन्दौर

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

बोध कथाएं

अमृत-शिखा : मृत्यु का बीज

प्रभु को पाना है तो मरना सीखो। क्या देखते नहीं कि बीज जब मरता है तो वृक्ष बन जाता है।

□

एक बाउल फकीर से कोई मिलने गया था। वह गीत गाने में मग्न उसकी आंखें इस जगत को देखती हुई मालूम नहीं होती थीं और न ही प्रतीत होता है कि उसकी आत्मा भी यहां उपस्थित है। वह कहीं और ही था, किसी और लोक में और किसी और रूप में। फिर जब उसका गीत थमा और उसकी चेतना वापिस लौटती हुई मालूम हुई तो आगन्तुक ने पूछा : "आपका क्या विश्वास है कि मोक्ष कैसे पाया जा सकता है ?" वह सुमधुर वाणी का फकीर बोला : "केवल मृत्यु के द्वारा।"

कल किसी से यह कहता था। वे पूछने लगे : "मृत्यु के द्वारा ?" मैंने कहा : "हां, जीवन में ही मृत्यु के द्वारा। जो शेष सबके प्रति मर जाता है, केवल वही प्रभु के प्रति जागता और जीवित होता है।"

□

जीवन में मरना सीख लेने से बड़ी और कोई कला नहीं है। उस कला को ही मैं योग कहता हूं। जो ऐसे जीता है कि जैसे मृत है, वह जीवन में भी जो सारभूत है, उसे अवश्य ही जान लेता है।

●

** दो कणिकाएं **

सत्य मेरा

मैं गौर से देखता हूं
तो पाता हूं
मैं अपने विकास में उतना उत्सुक नहीं
जितना इसमें कि लोग
मुझे विकसित समझें।

□ *स्वामी अगेह भारती*
जबलपुर

मौन

कौन मौन है ?
मैं, तुम या कोई और,
क्यों इतना मौन है ?
मौन ही जाने, क्यों मौन है
बस वह तो मौन है।

□ *कु० संध्या मेहता*
इन्दौर

भगवान

र
ज
नी
श

समाधि साधना

शि
वि
र

१० जुलाई से
२० जुलाई १९७४ ई०

२१ मार्च, १९७४ ई० को जब भगवान रजनीश बम्बई महानगरी को छोड़कर पूना की पुण्यनगरी में पधारे तो ३३ नं० कोरेगांव पार्क के भाग्य जाग उठे। आज तक जो राजाओं-महाराजाओं के भोगविलास का स्थान था वह अब महायोगी रजनीश का साधना केन्द्र बना। इसके साथ वाला १७ नं० बंगला "रजनीश आश्रम" बना। आश्रम की गतिविधि अभी सुचारु रूप से आरंभ भी न हो पायी थी कि १० जून से भगवान रजनीश समाधि साधना-शिविर शुरू हो गया। उसमें भाग लेने के लिए देश-विदेश के लोग पहुंचे। इस शिविर में विदेशियों के लाभार्थ भगवान श्री अंग्रेजी में बोल रहे थे। इस बार वे किसी विशेष विषय की व्याख्या न करके जिज्ञासुओं द्वारा उठायी गयीं नाना प्रकार की शंकाओं का समाधान कर रहे थे। प्रश्नोत्तर का यह कार्यक्रम पूरे दस दिन तक चला।

१० जून को प्रातः ८ बजे बड़े उत्साह से जब हम लोग उनका प्रवचन सुनने पहुंचे तो उस दिन उन्होंने स्पष्ट शब्दों में जो घोषणाएं कीं उन्हें सुनकर हम लोग स्तब्ध रह गए। उन्होंने कहा कि "आज से शिविर आरम्भ है। दिन में तीन बार ध्यान होगा परन्तु ध्यान के समय मैं उपस्थित नहीं रहूंगा। मैं केवल सुबह के समय एक-डेढ़ घण्टे तक आपके बीच बोलूंगा। बोलना तो केवल एक बहाना है; उद्देश्य है आपके साथ कुछ समय बिताना। इस सामीप्य से आप जितना लाभ उठा सकें, उठा लें। बुद्ध के भिक्षुओं की तरह आप जितना मुझे पी सकें उतना पी लें। इसके लिए बोलना आवश्यक नहीं है, चुपचाप भी बैठा जा सकता है किन्तु कठिनाई यह है कि मैं तो चुप बैठ जाऊंगा परन्तु आप मौन नहीं हो सकेंगे क्योंकि आपके दिमाग में कोई न कोई उधेड़बुन चलती रहेगी। हां, जब मैं बोलता हूं उस समय आप मेरी आंखों की ओर देखते रहिए और मेरी आवाज को सुनिए। ध्यान के बारे में भी कुछ एक बातें अच्छी तरह से समझ लीजिए। सुबह का सक्रिय ध्यान, वस्तुतः पूर्ण जागरण की स्थिति है। दोपहर के कीर्तन ध्यान में साधक, आधा सोया हुआ और आधा जागा हुआ होता है। रात्रि का ध्यान पूर्णतः सोई हुई स्थिति में पहुंचा देता है। सुबह के और रात्रि के ध्यान के लिए पेट खाली रहना चाहिए। रात के ध्यान के बाद भोजन करके सो जाइये। आज से रात को नए ढंग का ध्यान शुरू होगा। इसे कहते हैं, सूफी-दरवेश नृत्य। इसमें आपको घड़ी की सुई की भांति दायीं से बायीं ओर गोल-गोल घूमते हुए, एक घण्टे तक लगातार चक्कर लगाने हैं। फिर इसके बाद एक घण्टे तक पेट के बल इस प्रकार लेटना है कि जिससे नाभि से पृथ्वी का स्पर्श हो सके। उस समय धरती पर ऐसे लेटना चाहिए जैसे एक शिशु अपनी मां की छाती पर लेटता है। हां, अगर इस नृत्य के समय किसी की तबियत खराब होने लगे या पेट में दर्द होने लगे तो उसे तुरन्त रुक जाना चाहिए।

ये तीनों ध्यान दूसरे संन्यासी करायेंगे। मैं वहां नहीं रहूंगा इसलिए आपको स्वयं ही ध्यान लगाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। मेरे शरीर के प्रति मोह न रखें। (सो नाट बी अटेच्ड टू माइ बाडी) मेरे शरीर के लिए आपके मन में आसक्ति नहीं होनी चाहिए। *मेरा काम अब समाप्त हुआ।* (एज फार एज आई एम कन्सर्न्ड माइ वर्क इज ओव्हर) मेरी शारीरिक अनुपस्थिति के बाव-

जूद आपको जी-जान से ध्यान में उतरने की कोशिश करनी चाहिए। और याद रखिए, कि यद्यपि उस समय मेरा शरीर वहां नहीं होगा तथापि मैं निश्चित ही वहां मौजूद रहूंगा। मैं वायदा करता हूं कि आप मुझे वहां देखेंगे। कम से कम अस्सी प्रतिशत लोग मुझे अवश्य देख सकेंगे। बीस प्रतिशत नहीं देख पायेंगे। इसका मतलब है कि उनके ध्यान में कहीं कोई कमी रह गई है।"

जब भगवान रजनीश ये शब्द कह रहे थे, उस समय मेरे मन ने कहा—"मुझे तो तुम दिखाई देने से रहे! मुझे नहीं दिखाई दोगे क्योंकि न तो मैं कल्पनाशील हूं, न अत्यधिक अत्यधिक भावुक।"

जब भगवान श्री उठकर भीतर चले गए तो लोग भी ध्यान लगाने के लिए साथ वाले बंगले की ओर चले। किन्तु सबके कानों में बार-बार ये शब्द गूंज रहे थे—"मेरे शरीर का मोह छोड़ो.....मेरा काम अब समाप्त हुआ।" विस्मयविमूढ़ हो सब लोग यही सोच रहे थे कि भगवानश्री बार-बार किस बात की ओर संकेत कर रहे हैं! भविष्य की आशंका से आंसू टपकने लगे। किन्तु फिर भी सब लोग सक्रिय ध्यान में जुट गए। गुरु ने यदि शारीरिक अनुपस्थिति मे भी उपस्थिति का वायदा किया था, तो साधक भी गुरु के आदेश का पालन पूरे मन से कर रहा था।

पूना के स्वामी आनन्द स्वभाव के निर्देशन में सक्रिय ध्यान आरम्भ हुआ। साधकों ने तन-मन से ध्यान के सभी चरणों में भाग लिया। मैंने भी आरम्भ में कुछ देर तक तीव्र और गहरी सांस ली। उसके बाद कब शिथिल ध्यान में बैठ गयी, यह मुझे मालूम नहीं। थोड़ी देर में मन निर्विचार हुआ। पहले आंखों के सामने अन्धकार आया, फिर हल्के नीले प्रकाश में मैं डूब गयी और तब अचानक दिखाई दी भगवान श्री रजनीश की सौम्य आकृति! सफेद वस्त्रों से आवृत, मन्द गति से वे चले आ रहे थे। उनकी आंखों से, उनकी मुखमुद्रा से, उनके हाव-भाव से, उनकी चाल से, करुणा ही करुणा बरस रही थी। उनको देखते ही मैं जोर-जोर से रोने लगी। क्यो रोयी? इसका उत्तर देना मुश्किल है! उनकी उस आकृति में न जाने क्या था कि जिसे देखते ही मेरा हृदय द्रवित हो उठा। शायद भीतर कहीं गहरे में यह भाव उठा कि हमारे लिए तुम्हें क्या-क्या नहीं करना पड़ता! हमारे जैसे कृतघ्न लोगों के लिए कितना बखेड़ा मोल लिया है तुमने! सबको

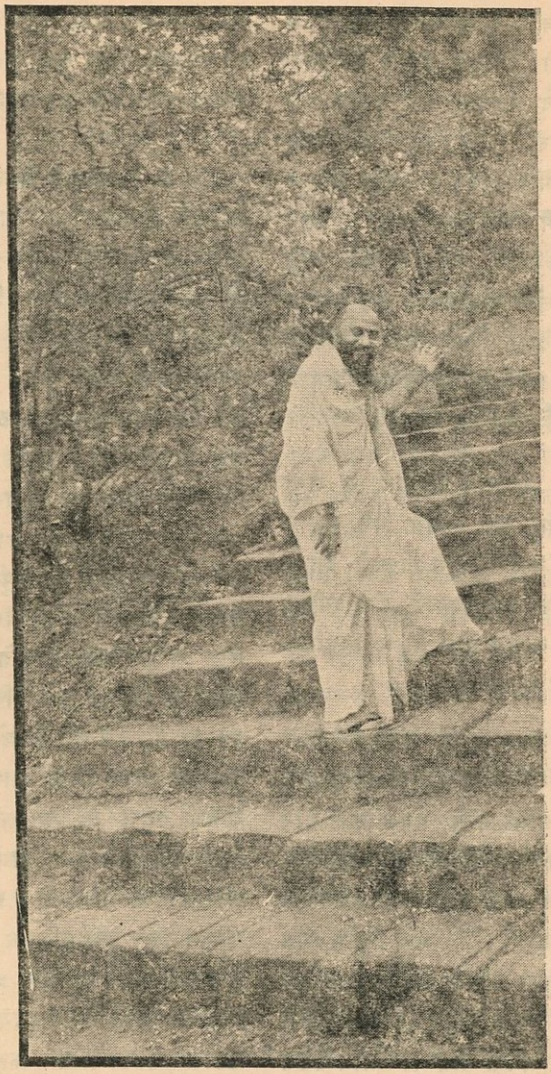

आनन्द-लोक में पहुंचाने की वासना के कारण ही तुम इस संसार में रुके हुए हो, अन्यथा तुम्हारे जैसा जीवन-मुक्त कबका इस शरीर को छोड़ देता ! रोते-रोते ही मंडप में बज रहे संगीत की ध्वनि मुझे सुनाई दी और

मैं वापस लौट आयी। सक्रिय ध्यान के समाप्त होने के कुछ देर बाद ही मुझे याद आया कि अरे! मुझे तो ध्यान में भगवान रजनीश दिखाई दिए! बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उनके दर्शन पाने के लिए मैंने तो कोई प्रयास नहीं किया था, अवश्य उन्होंने ही कुछ किया। साधकों से जो वायदा किया था, वह उन्होंने पूरा किया। यदि वे मुझे दिखाई दिए तो अवश्य ही अस्सी प्रतिशत लोगों को दिखाई दिए होंगे।

कीर्तन ध्यान दोपहर को साढ़े तीन बजे से साढ़े चार बजे तक होता था। मा योग साधना की कीर्तन मण्डली के वाद्य-संगीत के साथ मा तरला की स्वर-लहरी (गोविन्द बोलो हरि गोपाल बोलो) से जब वातावरण गुंजित हो जाता तो लोग तन मन की सुध बिसरा कर नाचने लगते और नाचते-नाचते गहरे ध्यान में प्रवेश कर जाते।

रात के सात बजे सूफी दरवेश नृत्य आरम्भ हुआ। वाद्य-संगीत की मादक लय के साथ गोल-गोल घूमने में इतना आनन्द आया कि मैं तुरन्त ही तेजी से घूमने लगी और पांच ही

मिन्टों में धड़ाम से जा गिरी। कुछ देर पेट के बल लेटी रही। फिर सोचा कि अभी तो प्रायः दो घण्टे बाकी हैं, इतनी देर लेट नहीं सकूंगी। अतः पुनः खड़ी हो गई। देखा कि आसपास के लोग धीरे-धीरे सम्हल कर घूम रहे हैं तो मैं भी सावधानी से घूमने लगी। वाद्य-संगीत अत्यन्त मधुर था। मृदंग की थाप अन्तर के भीतर पहुंच कर इतनी गहरी चोट करती कि शरीर से अनायास ही नाना प्रकार की नृत्य की मुद्राएं प्रकट होने लगीं। गोल-गोल घूमते हुए मैं ध्यान की स्थिति में पहुंच गई। मन निर्विचार हो गया, आंखें पूर्णतः बन्द नहीं हुई थीं, गोलाकार घूमता हुआ मण्डप दिखाई दे रहा था। तेज और गहरी सांस लेते हुए नासिका-पुट बन्द होते और खुलते। एक घण्टा बीत गया था किन्तु मैं जानती थी कि ध्यान की यह निर्विचार स्थिति कुछ ही क्षण रहेगी।

इसलिए उसकी स्वाभाविक समाप्ति की प्रतीक्षा कर रही थी। किन्तु उसी समय स्वामी तीर्थ ने आकर मुझसे कहा कि "लेट जाओ, लेट जाओ"। लेट तो मैं गई किन्तु ध्यान मेरा ऐसा उचटा कि पांच छः मिनट से अधिक लेट न सकी। तब मैंने जयन्ती भाई से शिकायत की कि मुझे घूमने से क्यों रोका गया, जबकि भगवान श्री का आदेश है कि जब तक गिर न जाओ, तब तक घूमते रहो। दूसरे दिन स्पष्टीकरण किया गया कि गिरना जरूरी है, संगीत की तेज लय के साथ यदि साधकों को तेजी से घुमाया जाये तो वे अवश्य गिरेंगे। जो न गिरे उसको एक घण्टे के बाद पेट के बल लेट जाना चाहिए। गिर कर नाभि द्वारा पृथ्वी के स्पर्श को, भगवान श्री द्वारा जो इतना महत्व दिया गया है, उससे लगता है कि इस दरवेश नृत्य का लक्ष्य नाभिचक्र को जागृत करता है।

गोल - गोल घूमते हुए व्यक्ति अत्यधिक सावधान रहता है कि कहीं गिर न जाये, आंखें आधी खुली रहती हैं (उन्हें बन्द करने की मनाही है) पूरे शरीर का सन्तुलन भी बना रहता है और मन धीरे-धीरे निर्विचार होने लगता है। इस स्थिति में यदि कोई अचानक गिर पड़े तो नाभि को धक्का लगेगा ही और नाभि के आसपास भी कंपन होगा। जिस ध्यान में प्रथम रात्रि मैं चली गई थी संभवतः उसका नाभि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस नृत्य के समय अधिकांश साधक गिरने के बाद ध्यान में चले जाते थे। कुछ लोग एक घण्टे के नृत्य के बाद केवल दो-तीन क्षणों के लिए निर्विचार होते थे। मुझसे एक घण्टे तक पेट के बल नहीं लेटा जा सकता था। इसके बारे में पूछने पर भगवान श्री ने कहा था कि अगर तुम पेट पर अधिक देर नहीं लेट सकतीं तो कुछ देर बाद पीठ पर लेट जाओ।

संयोगवश पहली रात के नृत्य के बाद ही एक वृद्ध सज्जन के पेट में दर्द होने लगा था। दूसरे दिन सुबह जब हम लोग भगवान श्री का प्रवचन सुनने जा रहे थे तो देखा कि १७ नं० बंगले के प्रांगण में दो-तीन व्यक्तियों से घिरा हुआ एक व्यक्ति जोर-जोर से कराह रहा है। शिविर के उस आध्यात्मिक वातावरण में भी हम अपनी लोभी प्रवृत्ति को न भूल सके। प्रवचन को सुनने का इतना लालच था कि हम मानवता के तकाजे को भी भूल गए और उनकी कराहों को सुना-अनसुना करके आगे बढ़ गए। हां! प्रवचन के बाद अवश्य हमारे पास इतना समय था कि उनकी पीड़ा की ओर कुछ ध्यान

दे सकें। तब तो सब लोग उन्हें घेर कर पूछने लगे कि क्या हुआ ? मालूम हुआ कि रात से पेट में असह्य पीड़ा हो रही है। डाक्टर की दवा से कोई लाभ नहीं हुआ। वे पीड़ा से चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे कि "मुझे भगवान श्री के दर्शन करा दो ! अब मैं जा रहा हूं"। सबके मन में यही बात उठी कि शायद दरवेश नृत्य के कारण ही इनके पेट में दर्द होने लगा है। डाक्टर से दवा लेनी चाहिए या नहीं, इसके बारे में पहले भगवान श्री से पूछ लेना चाहिए। लेकिन सबसे बड़ा प्रश्न तो यह था कि भगवान श्री तक यह खबर कैसे पहुंचायी जाये ? सब विवश से खड़े थे। यहां तक कि व्यवस्थापक भी सकपकाये से सोच रहे थे कि क्या किया जाये। तब सज्जन के भांजे, रवि ने हिम्मत की और वह उन्हें भगवान श्री के बंगले के उस बरामदे में ले गया जहां वे प्रवचन देते हैं।

रवि ने मा योग लक्ष्मी से अनुरोध किया कि किसी प्रकार वह भगवान श्री को यह बता दे कि इनके पेट में तीव्र वेदना हो रही है। कुछ देर में लक्ष्मी जी ने आकर कहा कि भगवान श्री कहते हैं कि दर्द ठीक हो जायेगा। रवि ने अपने मामा के कान में भगवान श्री का सन्देश कहा। कराहते-कराहते उन्होंने भगवान श्री की कुर्सी पर अपना मस्तक रखा। किन्तु उस बरामदे में अधिक देर रुकना मुश्किल था, क्योंकि बार-बार व्यवस्थापक कह रहे थे कि इन्हें यहां से ले जाओ। उसी हालत में रवि उन्हें ले आया, ला कर बिस्तर पर लिटाया और कुछ ही देर में उनका दर्द बिलकुल मिट गया।

भगवान श्री की अनुपस्थिति में व्यवस्था कुछ गड़बड़ हो जाती थी। हर संन्यासी मुखिया बन जाता। एक दिन एक संन्यासी ने माइक पर शिविरार्थियों को अच्छी तरह से डांटते हुए कहा कि शिविर में उन्हें हंसना नहीं चाहिए, यहां पर हंसी-मजाक करना अच्छा नहीं है। बड़ा आश्चर्य हुआ इस डांट को सुनकर ! शिविर में तो लोग चिन्ताओं से मुक्त होकर इतने हल्के हो जाते हैं कि अनायास ही हंसी के फुहारे छूटने लगते हैं।

मुझे आश्चर्य हुआ उन संन्यासिओं पर जिन्हें लोगों के ध्यान की चिन्ता कम थी और व्यवस्था की अधिक। प्रवचन के समय भगवान श्री की उपस्थिति मात्र से कई साधक ध्यान में प्रवेश कर जाते थे। एक दिन प्रवचन के समय ध्यान में कुछ गहराई आने लगी और मैं भगवान श्री के जाने के बाद भी उठ नहीं सकी। सब

लोग चले गये। मुझे वहीं रहने देते तो अच्छा था, किन्तु व्यवस्थापकों को तो उस दरी की चिन्ता थी जिस पर मैं बैठी हुई थी। एक संन्यासी ने एक ओर से और दूसरे संन्यासी ने दूसरी ओर से दरी को खींचना शुरू किया। उठाने का यही एक सभ्य तरीका था; सो मैंने आंखें खोलीं और देखा कि सामने बरामदे में दो-चार लोग बैठे हैं। मैं भी उठकर वहीं बैठ गई। चार-पांच मिनट के बाद जब पुनः ध्यान होने लगा तो मा योग लक्ष्मी ने आकर मुझसे कहा कि यहां ध्यान मत लगाइये, दूसरे बंगले में जाकर लगाइये। अधखुली आंखों से जब तक मैं वहां पहुंची, तब तक ध्यान की स्थिति समाप्त हो चुकी थी। वाह री व्यवस्था ! वाह रे नियम !!

आज तक के सभी शिविरों में साधकों पर कभी कोई पाबन्दी नहीं लगाई गई। उन्हें सदा पक्षियों की तरह उन्मुक्त विचरण की स्वतंत्रता दी जाती थी। यहां तक कि यदि कोई नग्न रहना चाहता तो वह शिविर में नग्नावस्था में ही घूमता रहता। न कोई उसकी आलोचना करता, न कोई उसका मजाक उड़ाता। परन्तु यह पहला शिविर था जिसमें इस प्रकार के निषेधात्मक आदेश मिले, जैसे—"हंसो मत ! सिगरेट मत पियो, भगवान की कुर्सी को मत छूओ, उस पर धब्बे पड़ जायेंगे," किन्तु ये सब बातें बहुत नगण्य हैं। आखिर व्यवस्थापक जी बेचारे हमारे जैसे ही लोग हैं।

दूसरे दिन प्रातः स्वामी तीर्थ ने प्रवचन के समय भगवान श्री से कहा कि कल हम लोगों के मन को बड़ी ठेस लगी जब आपने कहा कि आपका काम समाप्त हो गया है। हमारी समझ में नहीं आया कि आपका काम कैसे समाप्त हो गया है, अभी तो बहुत कुछ करने को बाकी है। कृपा करके इस पर कुछ प्रकाश डालिए। भगवान श्री ने उत्तर दिया—"मेरा काम समाप्त हुआ, यह कहने से मेरा मूल तात्पर्य यह है कि अब मेरी सब इच्छायें समाप्त हो गयी हैं। शरीर के रहने के लिए, शरीर को चलाने के लिए इच्छा का होना जरूरी है। मेरी इच्छाएं अब समाप्त हो गई हैं, किन्तु शरीर को इच्छा की समाप्ति का पता कुछ देर से लगता है। और समाप्ति का पता कुछ देर से लगता है। और वह समाप्त हुई पुरानी इच्छाओं के वेग (मोमेंटम) से कुछ समय तक चलता रहता है। बुद्ध को चालीस साल की आयु में ज्ञान प्राप्त हुआ था किन्तु वे अस्सी साल तक जीवित रहे। अब अपनी ओर से मैं कोई प्रयास नहीं

करूंगा किन्तु यह आपकी ग्राहकता पर निर्भर है कि आप मेरी उपस्थिति का कितना लाभ उठा सकते हैं।"

इस शिविर में भगवान श्री से जो प्रश्न पूछे गए वे प्रायः सभी जेन फकीरों की शिष्यों के प्रति कठोरता की कहानियों पर आधारित थे। एक दिन तीर्थ ने पूछा कि "भगवान श्री! जेन फकीर प्रायः अपने शिष्यों को डण्डे से पीट देते थे और कई बार डण्डे की चोट पड़ते ही शिष्य को ज्ञान हो जाता था। किन्तु आप तो डण्डे का प्रयोग नहीं करते? भगवान श्री ने उत्तर दिया—"मेरे शब्द ही डण्डे का काम करते हैं। मेरे चारों ओर कई लोग ऐसे एकत्रित हो गए हैं जिन्हें खुद नहीं मालूम कि वे यहां क्या कर रहे हैं। मैं एक-एक को परख कर अलग करता जाऊंगा। छोड़ूंगा तो मैं ही ऐसे लोगों को किन्तु वे समझेंगे कि वे मुझे छोड़ रहे हैं। मुझे अब सर्वसाधारण पर, या जनता पर काम नहीं करना है। अब तो गिने-चुने लोगों पर ही काम करूंगा। मुझसे लोग कहते हैं कि आपके यहां विदेशी अधिक दिखाई देते हैं। किन्तु आज संसार की स्थिति ही ऐसी हो रही है। भारत पश्चिम की भांति भौतिकवादी बन रहा है और पश्चिम इस ओर आध्यात्म की खोज के लिए आ रहा है। प्राचीन काल में जो स्थिति थी आज ठीक उसकी उल्टी हो रही है किन्तु विश्व का सन्तुलन बिगड़ा नहीं, पहले जैसा ही है। मेरे सामने प्रश्न पूर्व और पश्चिम का नहीं है, जो भी उपयुक्त पात्र मिलेगा, आध्यात्मिक-कोष की कुन्जी उसी को दे जाऊंगा। बुद्ध ने निर्वाण से पहले अपनी कुन्जी महाकश्यप को दी थी परन्तु महाकाश्यप को उपयुक्त पात्र की खोज में भारत को छोड़ कर चीन जाना पड़ा था।"

स्वामी तीर्थ ने दो प्रश्न और पूछे थे। किसी विशेष जेन फकीर का नाम लेते हुए उसने कहा था कि उसके जीवन-काल में दस व्यक्तियों को ज्ञान प्राप्त हुआ था। आपके शिष्यों में से किसी को ज्ञान की उपलब्धि हुई है? दूसरा प्रश्न यह था कि "आप पहले कभी भी अपनी सत्यानुभूति की या ज्ञान प्राप्ति की चर्चा नहीं करते थे किन्तु अब आप कभी-कभी करते हैं। ऐसा क्यों?"

भगवान श्री ने इन दोनों प्रश्नों के उत्तर-रूप जो कहा था, उसका सारांश यह है कि "पहले आप लोग इस स्थिति में नहीं थे कि आप सत्यानुभूति या ज्ञान प्राप्ति की बात को समझ सकें। अब धीरे-धीरे आप उस स्थिति में पहुंच रहे हैं, जहां कि मैं आपसे इसके बारे में दो बातें कर सकूं, इसीलिए इतने दिन चुप था।

ज्ञान की प्राप्ति अभी किसी को नहीं हुई लेकिन इसके लिए कुछ लोग तैयार हो रहे हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि कोई साधक लक्ष्य के बिल्कुल निकट पहुंच गया है किन्तु फिर वह आगे न बढ़कर वापस लौट गया है।"

पूना का यह प्रथम शिविर अवश्य ऐतिहासिक माना जायेगा। इसमें भगवान श्री ने अपनी कार्य-प्रणाली को बदलने की मात्र घोषणा ही नहीं की वरन् साधकों को अपने व्यवहार से भी यह अच्छी तरह से जता दिया कि मृदुल, मधुर व शीतल रजनीश अब ऐसी उत्तप्त किरणों को विकीर्ण करेगा कि कोई बिरला ही उनकी प्रखरता को सहन कर सकेगा। साधकों के गुरु के शरीर के प्रति मोह को मिटाने के लिए ही भगवान श्री ने इस शिविर में व्यक्तिगत भेंट बिल्कुल बन्द कर दी। दस-पन्द्रह के समूह को वे आध घण्टे के लिए मिलते और प्रत्येक व्यक्ति से उसकी समस्या पूछते। वस्तुतः गुरु के प्रति शिष्य की जो अपार श्रद्धा है उसमें यदि थोड़ा-सा मोह भी पैदा हो जाये तो वह स्वाभाविक ही माना जायेगा क्योंकि अभी वह उस वीतराग स्थिति में नहीं पहुंचा जहां पर स्वयं भगवान श्री हैं। उन्हें बांधने की चेष्टा ही कोई कैसे कर सकता है? पृथ्वी पर खड़े हम उस गगनबिहारी परमहंस की ऊंची उड़ान को ही देख सकते हैं।

उनके भक्तों को तो उनकी यह नयी कठोर मुद्रा भी बहुत प्रिय लगी। साधकों के उद्धार के लिए ही तो उन्हें अपने आचरण में कठोरता दिखलानी पड़ी। यह सच है कि कई लोग उनके डण्डे के डर से भाग जायेंगे, लेकिन यह भी सच है कि कई शिष्य बड़ी आतुरता से उनके डण्डे की मार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। धन्य होगा वह शिष्य जिसकी सबसे अधिक पिटाई होगी!

□ डा० उर्मिला
जबलपुर

□ सितंबर ७४ अंक में इसी क्रम में भगवत् शिविर की लीला प्रस्तुत करने जा रहे हैं : स्वामी अगेह भारती। □

कृष्ण और गीता

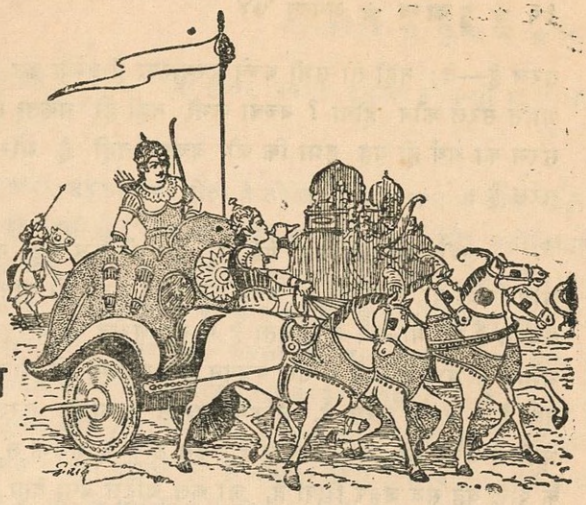

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक ११ वां, श्लोक ४९ से ५१ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

गीता के ये प्रवचन अनवरत पिछले माहों के 'युक्तांद' के अंकों में हमने संजोए हैं, उसी क्रम शृङ्खला में प्रस्तुत है यह ११वां समापन प्रवचन। अंतिम १२वां प्रवचन हमने सर्वप्रथम जून ७३ अंक में प्रकाशित किया था, तभी से यह प्रकाशन शृङ्खला अनवरत चल रही थी। —सं०]

एक मित्र ने पूछा है, क्या कोई मनुष्य, जो बच्चे की भांति सरल हो, जिसे कोई भी ज्ञान नहीं है, परमात्मा को पा सकता है ? यदि हां, तो कैसे ?

जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन है। जीसस से पूछा किसी ने कि कौन आपके राज्य का प्रवेश का अधिकारी है—प्रभु के राज्य में कौन प्रवेश कर सकेगा ? तो जीसस ने कहा, जो बच्चों की भांति सरल और निर्दोष होंगे।

लेकिन इसमें बहुत कुछ समझने जैसा है। एक तो जीसस ने यह नहीं कहा कि जो बच्चे हैं—वे। जीसस ने कहा कि जो बच्चों की भांति

सरल हैं—वे; नहीं तो सभी बच्चे परमात्मा में प्रवेश कर जाएंगे। बच्चे की भांति सरल कौन होगा ? बच्चा कभी नहीं हो सकता। बच्चे की भांति सरल का अर्थ ही यह हुआ कि जो बच्चा नहीं है और बच्चे की भांति सरल है।

शरीर की उम्र बढ़ गई हो, मन की उम्र बढ़ गई हो, संसार को जान लिया हो, फिर भी जो बच्चे की भांति सरल हो जाता है। तो एक तो बचपन है जो मां-बाप से मिलता है। वह शरीर का बचपन है। वह बचपन अज्ञान से भरा हुआ है। उस बचपन में परमात्मा को जानने का कोई उपाय नहीं है। बच्चा सरल है, लेकिन अज्ञान के कारण सरल है। ये सरलता झूठी है बच्चे की सरलता झूठी है, इसे ठीक से समझ लें; क्योंकि सरलता के पीछे वह सब जहर छिपा है, जो कल जटिल बना देगा। यह सिर्फ ऊपर-ऊपर है। भीतर तो बच्चे के वही सब छिपा है, जो जवानी में निकलेगा, बुढ़ापे में निकलेगा। वह सब मौजूद है। यह बच्चा ऊपर से सरल है, भीतर से जटिल है। और ऊपर भी इतना सरल नहीं है, जितना हम मानते हैं।

फ्रायड की खोजों ने काफी जाहिर कर दिया है कि बच्चे भी बहुत जटिल हैं। आप सोचते यह हैं कि बच्चा क्रोध नहीं करता; सच तो यह है कि बच्चे जितना क्रोध करते हैं, बड़े नहीं कर पाते। आप सोचते यह हैं कि बच्चा ईर्ष्या से नहीं भरता, बच्चे भयंकर रूप से ईर्ष्यालु होते हैं। और दूसरे के हाथ में खिलौना देखकर उनको जितनी बेचैनी होती है, उतना दूसरे की कार देखकर आपको नहीं होती। और आप सोचते यह हैं कि बच्चों में घृणा नहीं होती। और सोचते यह हैं कि बच्चों में हिन्सा नहीं होती; पर बच्चे भयंकर रूप से हिंसक होते हैं। और कोई कीड़ा उनको दिखाई पड़ जाय चलता हुआ, तो जब तक उसको तोड़-मरोड़ न डालें, तब तक उनको चैन नहीं होती।

बच्चा तोड़ने में भी काफी रस लेता है, विध्वंस में भी काफी रस लेता है, ईर्ष्या से भी भरा होता है, हिन्सा से भी भरा होता है। और आप सोचते यह हैं कि बच्चे में काम-वासना नहीं होती, वह भी भ्रांति है; क्योंकि आधुनिकतम सारी खोजें कहती हैं कि बच्चे में सारी काम-वासना भरी है, जो बाद में प्रकट होने लगेगी। आप ख्याल करें, हालांकि हमारा मन बहुत-

सी बातों को मानने को तैयार नहीं होता, क्योंकि हमारी बहुत-सी धारणाओं को चोट लगती है।

घर में अगर लड़का पैदा होता है तो लड़के और बाप के बीच थोड़ी-सी कलह बनी ही रहती है। वह दो पुरुषों की कलह है। और मनोविज्ञान कहता है कि वह एक स्त्री के लिए ही वह कलह है, मां के लिए है। वह बच्चे की जो मां है वह और बच्चे का बाप जो है, वे दोनों अधिकारी हैं—एक स्त्री के। और बच्चा पसन्द नहीं करता कि बाप ज्यादा बाधा डाले। और बाप भी ज्यादा पसन्द नहीं करता कि बच्चा इतना बीच में आ जाय कि पत्नी और उसके बीच खड़ा हो जाय। बाप की दोस्ती बेटे से मुश्किल से होती है, लेकिन मां की दोस्ती बेटे से हमेशा होती है। बेटी हो तो बाप की दोस्ती होती है, मां की दोस्ती नहीं होती। बेटी और मां के बीच सूक्ष्म कलह निर्मित हो जाती है। जैसे-जैसे लड़की बड़ी होने लगेगी वैसे-वैसे मां और लड़की के बीच उपद्रव शुरू हो जाएगा।

फ्रायड कहता है कि यह सेक्स की जेलसी (ईर्ष्या) है, यह काम-वासना ही इसके पीछे मूल आधार है। बच्चा उतनी ही काम-वासना से भरा है जितना कोई और। फर्क सिर्फ इतना है कि अभी उसकी काम-वासना का यन्त्र तैयार हो रहा है। जिस दिन यन्त्र तैयार हो जाएगा वासना फूट पड़ेगी, चौदह वर्ष में, तेरह वर्ष में, वासना फूट पड़ेगी। यन्त्र तो बन रहा है, वासना भीतर पूरी है, वह रास्ता खोज रही है। यन्त्र पूरे होते ही से उसका विस्फोट हो जाएगा।

बच्चे को हम जितनी सरलता मानकर चलते हैं, वह मानी हुई है। और उस मानने का कारण भी अहंकार है। क्योंकि हर आदमी यह मानना चाहता है कि बचपन में मैं बड़ा पवित्र था। इस भ्रांति के दो कारण हैं—एक तो आपको बचपन की ठीक-ठीक याद नहीं, और दूसरा जिन्दगी इतनी बुरी है और जिन्दगी इतनी बेहूदी और कष्ट और संकट से भरी है कि मन कहीं न कहीं राहत खोजना चाहता है। तो कम से कम बचपन स्वर्ग था, इसको मानने से थोड़ी राहत मिलती है। दो ही उपाय हैं—या तो आगे स्वर्ग मानें, भविष्य में जो कि मुश्किल है, क्योंकि वहां मौत दिखाई पड़ती है। इसलिए आगे स्वर्ग को मानने में बड़ा मुश्किल होता जाता है। और

रोज आपकी उलझन बढ़ती जाती है, इसलिए आगे स्वर्ग होगा, इसमें भरोसा नहीं बैठता। आगे नर्क हो सकता है, लेकिन स्वर्ग कैसे होगा आगे ?

रोज जब उलझन बढ़ती जाती है और जिन्दगी टूटती जाती है और आदमी बूढ़ा होने लगता है, तो आगे नर्क दिखाई पड़ता है। तो आदमी कहीं तो राहत चाहता है, सान्त्वना चाहता है। लौटकर अपने बचपन में स्वर्ग को रख लेता है। तो सभी लोग बचपन की याद करते रहते हैं कि बड़ा सुख था। यह सुखद होना एक भ्रांति है, मन के लिए एक सान्त्वना है। बचपन सुखद नहीं है। बच्चों से पूछें, सभी बच्चे जल्दी बड़े होना चाहते हैं। कोई बच्चा, बच्चा नहीं रहना चाहता; क्योंकि बचपन इसे दुखद मालूम पड़ रहा है। बचपन के अपने दुख हैं जो आप भूल गए। वे बच्चों को निरीक्षण करने से पता चलते हैं, तो बच्चों को लगता है कि वे बिल्कुल परतन्त्र हैं—कोई स्वतन्त्रता नहीं। हर बात में किसी की हां, और किसी की ना को स्वीकार करना पड़ता है। बच्चा जल्दी बड़ा होना चाहता है, यह गुलामी है। बच्चा कमजोर है। सब ताकतवर हैं उसके आसपास। इससे उसके अहंकार को भारी ठेस लगती है। वह भी बड़ा होना चाहता है और कहना चाहता है कि मैं भी कुछ हूं। हर चीज पर निर्भर है। खुद कुछ भी नहीं कर सकता, असहाय है, हेल्पलेस है। इसलिए बच्चा सुख में नहीं हो सकता। यह सुख बूढ़े का ख्याल है, धारणा है, पीछे लौटें। फिर आपको याद कितनी है। पांच साल के पहले की तो याद होती नहीं है। मुश्किल से कोई बहुत अच्छी याददाश्त हो तो चार साल, उसके पहले की आपको याद नहीं होती।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चार साल पहले की आपको याद क्यों नहीं है ? स्मृति तो होनी चाहिए। आप जिन्दा रहे। मां के पेट से पैदा हुए। चार साल तक आप जिन्दा थे, घटनाएं घटीं। उनकी स्मृति क्यों खो जाती है ? आपका मन उनकी स्मृति को खो क्यों देता है ? तो बड़ी अनूठी बात हाथ में आई है और वह यह कि चार साल की जिन्दगी इतनी दुखद है कि मन उसे याद नहीं करना चाहता। दुख को हम भुलाना चाहते हैं, लेकिन हम भूल ही नहीं सकते; क्योंकि जो घट गया है वह स्मृति में दबा है। इसलिए अगर आपको बेहोश किया जाय, सम्मोहित—हिप्नोटाइज—किया जाय तो आपको सब याद आ जाता है। ठीक पहले दिन जब आप पैदा हुए

और जो आपने पहली चीख-पुकार मचाई, इस दुनिया में आते ही वे जो आपने दुख की पहली घोषणा की थी—उससे लेकर सब याद आ जाता है। गहरे सम्मोहन में आपके मन की सारी परतें उघड़ आती हैं और सब याद आ जाता है। सम्मोहन के जो नतीजे है, वे यह हैं कि बचपन बहुत दुखद है, इसलिए हम उसे भूल गए। जो दुखद है, उसे याद करना मन नहीं चाहता। जो सुखद है, उसे याद करना चाहता है। तो हम बचपन में जो सुख है, उसको चुन लेते हैं और जो दुख है, उसे भूल जाते हैं। उसी सुख को इकट्ठा करके बाद में हम कहते हैं, बचपन स्वर्ग था। न तो बचपन स्वर्ग है, न बचपन में ऐसी कोई सरलता है जैसा हम सोचते हैं। लेकिन सरलता लगती है, उसके कुछ कारण जरूर होने चाहिए।

एक तो बच्चा क्षण क्षण जीता है। यह बात सच है। न तो अतीत का बहुत हिसाब रखता है, क्योंकि हिसाब रखने की जितनी बुद्धि चाहिए, वह उसके पास नहीं है। न भविष्य की योजना बनाता है, क्योंकि भविष्य की योजना के लिए जितनी समझ चाहिए, वह भी उसके पास नहीं है : वह क्षण क्षण जीता है जैसे पशु जीते हैं। अभी जी लेता है। इसलिए बच्चा आप पर नाराज हो जाता है, घड़ी भर बाद भूल जाता है। इसलिए नहीं कि उसका क्रोध नहीं था, बल्कि इसलिए कि अभी हिसाब रखने वाला मन विकसित नहीं हुआ है। घड़ी भर पहले नाराज हो लिया, घड़ी भर बाद हंसने लगा। वह भूल गया कि नाराज हुआ था, अब हंसना नहीं चाहिए, इस आदमी के साथ। इन दोनों के बीच सम्बन्ध बिठाने की बुद्धि अभी विकसित नहीं हुई है।

तो बच्चे की सारी सरलता उसके क्षण-क्षण जीने, बुद्धिहीन होने, अज्ञान में होने के कारण है। ऐसी सरलता से कोई परमात्मा को नहीं पा सकता। एक और सरलता है; जो जीवन के सारे अनुभव को जानने के बाद इस अनुभव को उतारकर रख देने से उपलब्ध होती है।

जिन्दगी एक बोझ है—अनुभव का। बच्चा बड़ा हो रहा है, अनुभव इकट्ठा कर रहा है। एक दिन ऐसी घड़ी अगर आपके जीवन में आ जाय कि आपको पता लगे यह सारा अनुभव व्यर्थ है। यह जो जाना, जो सीखा, जो जिया—सब व्यर्थ है, कचरा है। और आप इस सारे कचरे को पटक दें अपने सिर से नीचे तो आपको एक नया बचपन मिलेगा। आप फिर वैसे

सरल हो जाएंगे, जो निर्भार होने से कोई भी हो जाता है। वह सरलता जीसस का मतलब है कि जो बच्चों की भांति सरल है, यह बच्चों की भांति सिर्फ उदाहरण है।

संत फिर से बच्चे की भांति हो जाता है। या ठीक से हम कहें, तो संत सच में पहली बार बच्चा होता है; क्योंकि कोई बच्चा, बच्चा है नहीं। उसके भीतर सब रोग छिपे हैं, जो बड़े हो रहे हैं। समय की देर है, सब रोग प्रकट हो जाएंगे। रोग मौजूद हैं, उनका बीज तैयार है। सिर्फ पानी पड़ेगा, धूप लगेगी और सब प्रकट हो जाएगा।

तो बच्चे की जो सरलता है, वह झूठी है। संत की सरलता ही सच्ची है, क्योंकि अब रोग छूट गए—अब भीतर कुछ बचा नहीं—संत खाली है। खालीपन सरलता है। अनुभव से खाली, ज्ञान से खाली, जीवन के सारे बोझ से खाली—रिक्त, शून्य। अब उसने जो भी जाना, सब पटक दिया। अब चेतना अकेली रह गई।

ऐसा समझें कि एक दर्पण है। दर्पण पर कोई आता है तो चित्र बनता है। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर प्रज्ञा है, बुद्धि है। उस पर सब चित्र बनते हैं। संसार भर के चित्र बनते हैं। जो भी सामने आता है, जाता है—उसके चित्र बनते हैं। लेकिन दर्पण दो तरह के हो सकते हैं। एक दर्पण तो होता है फोटोग्राफर के कैमरे में, जहां प्लेट लगी है, वह भी दर्पण है; लेकिन खास तरह का दर्पण है। उसमें खास रासायनिक तत्व लगाए गए हैं। उसमें जो प्रतिबिम्ब बनेगा, वह बनेगा ही नहीं, पकड़ भी लिया जाएगा। वह जो फोटोग्राफर की प्लेट है, एक दफा काम में आ सकती है। उसमें फिर जो पकड़ गया, तो प्लेट खराब हो गई। अब उसका दुबारा उपयोग नहीं हो सकता। दर्पण है, उसका हजार बार उपयोग हो सकता है, क्योंकि दर्पण में प्रतिबिम्ब बनता है; लेकिन पकड़ता नहीं है। आप गए प्रतिबिम्ब चला गया, दर्पण फिर खाली हो गया।

आदमी अपने मन का दो तरह से उपयोग कर सकता है—फोटो प्लेट की तरह या दर्पण की तरह। जो आदमी फोटो प्लेट की तरह अपने मन का उपयोग करता है, वह सब चीजों को संग्रहीत करता जाता है, पकड़ता जाता है। जिन्दगी में जो भी होता है, सब इकट्ठा करता जाता है—कूड़ा-करकट, गाली-गलौज, किसने क्या कहा, क्या नहीं कहा, क्या पढ़ा,

क्या सुना; जो भी होता है, सब इकट्ठा करता जाता है। यही इकट्ठा बोझ भीतर आत्मा का बुढ़ापा हो जाता है। यह जो बोझ है, यही बुढ़ापा है आध्यात्मिक अर्थों में। शरीर हो सकता है आपका जवान भी हो, लेकिन यह जो बोझ है भीतर, यही आध्यात्मिक बुढ़ापा है। जिस दिन आपको यह समझ में आ जाता है कि मैं मन का एक और तरह का भी उपयोग कर सकता हूं—मिरर-लाइक, दर्पण की तरह। आप इस सारे बोझ को पटक देते हैं और खाली दर्पण हो जाते हैं।

यह जो खाली दर्पण हो जाना है, यह है बचपन आध्यात्मिक अर्थों में निर्बोझ, निर्भार। जीसस इसकी बात कर रहे हैं। अगर आप ऐसे बच्चे हो सकते हैं तो परमात्मा को पाने के लिए और कुछ भी न करना पड़ेगा, इतना करना काफी है। लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि बच्चे तो न पा सकेंगे, आपको एक दफे भटकना पड़ेगा। एक दफे बोझ इकट्ठा करना पड़ेगा। अनुभव से गुजरना पड़ेगा, संसार की पीड़ा झेलनी पड़ेगी और इस पीड़ा के झेलने के बाद अगर आप इस सबको छोड़ने को राजी हो जाएं, तो ही आपकी जिन्दगी में असली बचपन का जन्म होगा।

इसलिए हमने इस मुल्क में ब्राम्हणों को द्विज कहा है। सभी ब्राम्हण द्विज नहीं होते। सभी ब्राम्हण, ब्राम्हण भी नहीं होते। लेकिन हमारे कहने में बड़ा अर्थ है। द्विज का अर्थ है—ट्वाइस बार्न जिसका दुबारा जन्म हुआ। उसको ही द्विज कहा जाता है, जिसने इस बचपन को पा लिया—जिसका दुबारा जन्म हो गया—जो फिर से ऐसे पैदा हो गया जैसे गर्भ से ताजा आ हो—कुआंरा, अछूता, जगत में जिसने रहकर भी कुछ पकड़ा नहीं है।

कबीर ने कहा है—ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया। कहा कि बहुत जतन से ओढ़ी तेरी चादर और फिर जैसी थी वैसी रख दी, जरा भी दाग नहीं लगने दिया। यह बचपन का मतलब है। जिन्दगी में जिए लेकिन इस जिन्दगी की काल कोठरी में कोई कालख न लगी या लगी भी तो उसे पोंछने की क्षमता जुटा ली। और जब वापस निकले इस कोठरी के बाहर तो वैसे शुभ्र थे जैसे इस कोठरी में कभी गए ही न हों।

जीवन के अनुभव से गुजरना तो जरूरी है, अन्यथा जीवन का कोई उपयोग ही नहीं रह जाता। इतना ही उपयोग है। ध्यान रहे, यहां जो भी

दुख-सुख घटित होता है, उसका इतना ही उपयोग है कि आप इस बोझ को समझ समझ कर एक दिन इसके पार उठ सकें और जिस दिन आप पार उठ जाते हैं उसी दिन दुख-सुख बन्द हो जाते हैं और आनन्द की वर्षा शुरू हो जाती है।

पूछा है, फिर क्या करना जरूरी है ? कुछ भी करना जरूरी नहीं है। इतना अगर कर लिया कि जिन्दगी के कचरे को हटा दिया मन से और खाली कर लिया मन और दर्पण की तरह शांत हो गए, तो सब हो गया। परमात्मा तत्क्षण दिखाई पड़ जाएगा। वह भीतर मौजूद ही है। हम इतने भरे हैं, उस भरे के कारण वह दिखाई नहीं पड़ता। वह निकट ही मौजूद है, लेकिन हमारी आंखों में इतने कंकड़-पत्थर पड़े हैं कि वह दिखाई नहीं पड़ता। बचपन की आंख मिल जाय ताजी, कुआंरी, वह अभी और यहीं उपलब्ध हो जाय।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि स्वीडन के एक वैज्ञानिक डा० जैक्सन ने आत्मा को तौलने संबंध में कुछ खोज की है और कहा है, आत्मा का वजन इक्कीस ग्राम है। अगर आत्मा तोली जा सकती है, तो फिर उसे पकड़ा भी जा सकता है; और अगर आत्मा को पकड़ सकते हैं, तो फिर उसे उपयोग में भी ला सकते हैं। क्या आत्मा की तौल हो सकती है ?

डा० जैक्सन की खोज मूल्यवान है, इसलिए नहीं कि उन्होंने आत्मा तौल ली है, जिसे उन्होंने तौला है, उसे वे आत्मा समझ रहे हैं। लेकिन उनकी तौल मूल्यवान है। आदमी सैकड़ों वर्षों से कोशिश करता रहा है कि जब मृत्यु घटित होती है, तो शरीर से कोई चीज बाहर जाती है या नहीं जाती ? और बहुत प्रयोग किए गए हैं।

तीन हजार साल पहले भी आदमी को इजिप्त के फैरारोह ने कांच की एक पेटी में बन्द करके रखा मरते वक्त। क्योंकि अगर आत्मा जैसी कोई चीज बाहर जाती होगी, तो पेटी टूट जाएगी, कांच फूट जाएगा, कोई चीज बाहर निकलेगी। लेकिन कोई चीज बाहर नहीं निकलती। स्वभावतः दो ही अर्थ होते हैं। या तो यह अर्थ होता है कि आत्मा को बाहर निकलने के लिए कांच की कोई बाधा नहीं है, जैसे कि सूरज की किरण निकल जाती है कांच के बाहर और कांच नहीं टूटता, या तो यह अर्थ होता है; या तो यह अर्थ होता है कि कोई चीज बाहर नहीं निकलती।

फैरारोह ने तो यही समझा कि कोई चीज बाहर नहीं निकली; क्योंकि कोई चीज बाहर निकलती तो कांच टूटता। समझो कि कोई आत्मा नहीं है। फिर और भी बहुत प्रयोग हुए। रूस में भी बहुत प्रयोग हुए कि आदमी मरता है, तो उसके शरीर में कोई भी अन्तर पड़ता हो तो हम सोचें कि कोई चीज बाहर गई। लेकिन अब तक कोई अन्तर का अनुभव नहीं हो सका था।

जैक्सन की खोज मूल्यवान है कि उसने कम से कम इतना तो सिद्ध किया कि कुछ अन्तर पड़ता है, इतनी बात तय हुई कि आदमी जब मरता है तो अन्तर पड़ता है। मृत्यु और जीवन के बीच थोड़ा-सा फासला है, इक्कीस ग्राम का ही सही, अन्तर पड़ जाता है। अब यह जो इक्कीस ग्राम का अंतर पड़ता है, स्वभावत: जैक्सन वैज्ञानिक है, वह सोचता है कि यही आत्मा का वजन होना चाहिए, क्योंकि वैज्ञानिक सोच ही नहीं सकता कि बिना वजन के भी कोई चीज हो सकती है।

वजन पदार्थवादी मन की पकड़ है। बिना वजन के कोई चीज कैसे हो सकती है? वैज्ञानिक तो सूरज की किरणों में भी वजन खोज लिए हैं। वजन है, बहुत थोड़ा है। पांच वर्ग मील के घेरे में जितनी सूरज की किरणें पड़ती हैं, उनमें कोई एक छटाक वजन है। इसलिए एक किरण आप पर पड़ती है, तो आपको वजन नहीं मालूम पड़ता; क्योंकि पांच वर्गमील में जितनी किरणें पड़ें दोपहर में, उनमें एक छटांक वजन होता है।

लेकिन वैज्ञानिक तो तौलकर चलता है। मेजरेबिल, कुछ भी हो जो तौला जा सके, तो ही उसकी समझ गहरी होती है। एक बात अच्छी है कि जैक्सन ने पहली दफा मनुष्य के इतिहास में तौल के आधार पर ही तय किया कि जीवन और मृत्यु में थोड़ा फर्क है। कोई चीज कम हो जाती है। स्वभावत: वह सोचता है कि आत्मा इक्कीस ग्राम वजन की होनी चाहिए।

अगर आत्मा का कोई वजन है, तो वह आत्मा ही नहीं रह जाती, पहली बात। क्योंकि आत्मा और पदार्थ में हम इतना ही फर्क करते हैं कि जो मापा जा सके वह पदार्थ है। अंग्रेजी में शब्द है—मैटर, वह मेजर से ही बना हुआ शब्द है—जो तौला जा सके, मापा जा सके। हम माया कहते हैं. माया शब्द भी माप से ही बना हुआ शब्द है जो तौली जा सके, नापी जा

सके, मेजरेबिल—माप्य हो। तो पदार्थ हम कहते हैं उसे—जो मापा जा सके, तौला जा सके। और आत्मा हम उसे कहते हैं—जो न तौली जा सके, न मापी जा सके। अगर आत्मा भी नापी जा सकती है, तो वह भी पदार्थ का एक रूप है।

और अगर किसी दिन विज्ञान ने यह खोज लिया कि पदार्थ भी मापा नहीं जा सकता, तो हमें कहना पड़ेगा कि वह भी आत्मा का विस्तार है। यह जो इक्कीस ग्राम की कमी हुई है, यह आत्मा की कमी नहीं है, प्राणवायु की कमी है। आदमी जैसे ही मरता है, उसके शरीर के भीतर जितनी प्राण-वायु थी, वह बाहर हो जाती है। और आपके भीतर काफी प्राणवायु की जरूरत है, जिसके बिना आप जी नहीं सकते। आक्सीजन की जरूरत है भीतर, जो प्रतिपल जलती है और आपको जीवित रखती है। सब जीवन एक तरह की जलन, एक तरह की आग है। सब जीवन आक्सीजन का जलना है। चाहे दिया जलता हो, तो भी आक्सीजन जलती है। और आप चाहे जीते हों तो भी आक्सीजन जलती है। तो एक तूफान आ जाए और दीया जलता हो, तो आप तूफान से बचाने के लिए एक बर्तन दिए पर ढांक दें, तो हो सकता है तूफान से दिया न बुझता, लेकिन आपके बर्तन ढांकने से दिया बुझ जाएगा। क्योंकि बर्तन ढांकते ही उसके भीतर जितनी आक्सीजन है, उतनी देर जल पाएगा, आक्सीजन के खत्म होते ही बुझ जाएगा।

आदमी भी एक दीया है। आक्सीजन भीतर प्रतिपल जल रही है। आपका पूरा शरीर एक फैक्टरी है, जो आक्सीजन को जलाने का काम कर रही है, जिससे आप जी रहे हैं। तो जैसे ही आदमी मरता है भीतर की सारी प्राणवायु व्यर्थ हो जाती है, बाहर हो जाती है। उसको जो पकड़ने वाला भीतर मौजूद था, वह हट जाता है, वह छूट जाती है। उस प्राणवायु का वजन इक्कीस ग्राम है। लेकिन विज्ञान को वक्त लगेगा अभी कि प्राणवायु का वजन माप के वह तय करे।

और अगर जैक्सन को पता चल जाय कि यह प्राणवायु का नाम है, तो सिद्ध हो गया कि आत्मा नहीं है, प्राणवायु ही निकल जाती है। इससे कुछ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि आत्मा को वैज्ञानिक कभी भी न पकड़ पाएंगे। और जिस दिन पकड़ लेंगे, उस दिन आप समझें कि आत्मा नहीं है।

इसलिए विज्ञान से आशा मत रखिए कि वे कभी आत्मा को पकड़ लेंगे। और वैज्ञानिकों से सिद्ध हो जाएगा कि आत्मा है। जिस दिन सिद्ध हो जाएगा उस दिन आप समझना कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण सब गलत थे। जिस दिन विज्ञान कह देगा आत्मा है, उस दिन समझना कि आपके सब अनुभवी नासमझ थे, भूल में पड़ गए। क्योंकि विज्ञान के पकड़ने का ढंग ऐसा है कि वह सिर्फ पदार्थ को ही पकड़ सकता है। वह विज्ञान की जो पकड़ने की व्यवस्था है, वह मैथाडालाजी है, उसकी जो विधि है—वह पदार्थ को ही पकड़ सकती है, वह आत्मा को नहीं पकड़ सकती।

पदार्थ वह है, जिसे हम विषय की तरह, आब्जेक्ट की तरह देख सकते हैं। और आत्मा वह है, जो देखती है। विज्ञान देखने वाले को नहीं पकड़ सकता, जो भी पकड़ेगा वह दृश्य होगा। जो भी पकड़ में आ जाएगा, वह देखने वाला नहीं है, वह जो दिखाई पड़ रहा है, वही है। दृष्टा विज्ञान की पकड़ में नहीं आएगा। और धर्म और विज्ञान का यही फासला है। अगर विज्ञान आत्मा को पकड़ ले तो धर्म की फिर कोई भी जरूरत नहीं है। और अगर धर्म पदार्थ को पकड़ ले तो विज्ञान की फिर कोई भी जरूरत नहीं है। हालांकि दोनों तरह के मानने वाले पागल हैं। कुछ पागल हैं, जो समझते हैं कि धर्म काफी है, विज्ञान की कोई जरूरत नहीं है। वे उतने ही गलत हैं जितने कि कुछ वैज्ञानिक समझते हैं कि विज्ञान काफी है और धर्म कोई जरूरत नहीं है।

विज्ञान पदार्थ की पकड़ है, पदार्थ की खोज है। धर्म आत्मा की खोज है, अपदार्थ की, 'नान-मैटर' की खोज है। ये दोनों खोज अलग हैं। इन दोनों खोज के आयाम अलग हैं। इन दोनों खोज की विधियां अलग हैं। अगर विज्ञान की खोज करनी है तो प्रयोगशाला में जाओ। और अगर धर्म की खोज करनी है तो अपने भीतर जाओ। अगर विज्ञान की खोज करनी है तो पदार्थ के साथ कुछ करो। अगर धर्म की खोज करनी है तो अपने चैतन्य के साथ कुछ करो। तो इस चैतन्य को न तो टेस्ट ट्यूब रखा जा सकता है, न काटा-पीटा जा सकता है सर्जन की टेबल पर, कोई उपाय नहीं है। इसका तो एक ही उपाय है कि अगर आप अपने को सब तरफ से शान्त करके भीतर खड़े हो जाएं जागकर, तो इसका अनुभव कर सकते हैं। यह अनुभव निजी और वैयक्तिक है।

एक मित्र ने यह सवाल भी पूछा हैं कि धर्म और विज्ञान में क्या फर्क है? यही फर्क है। विज्ञान है—परंपरा समूह की। धर्म है—निजी अनुभव व्यक्ति का। विज्ञान प्रमाण दे सकता है, धर्म प्रमाण नहीं दे सकता। धर्म केवल अनुभव दे सकता है, प्रमाण नहीं। विज्ञान कह सकता है, सौ डिग्री पर पानी गर्म होता है, हजार लोगों के सामने पानी गर्म करके बताया जा सकता है, सौ डिग्री पर पानी गर्म हो जाएगा, प्रमाण हो गया। धर्म जिन बातों की चर्चा करता है, वह किसी के सामने भी प्रकट करके नहीं बताई जा सकती। जब तक कि वह दूसरा आदमी अपने भीतर जाने को राजी न हो; और वह भी भीतर चला जाय, तो किसी दिन दूसरे के सामने प्रमाण नहीं दे सकेगा। धर्म के पास कोई प्रमाण नहीं है, सिर्फ अनुभव है। विज्ञान के पास प्रमाण है, अनुभव कुछ भी नहीं।

तो अगर आपको प्रमाण इकट्ठे करने हों, तर्क इकट्ठे करने हों, तो विज्ञान उचित है। और अगर आपको जीवन का अनुभव पाना हो, जीवन के रहस्य में उतरना हो तो धर्म की जरूरत है। और धर्म और विज्ञान पृथ्वी पर सदा बने रहेंगे, क्योंकि उनके आयाम अलग हैं—उनकी दिशाएं अलग हैं। जैसे आंख देखती है और कान सुनता है। अगर आंख सुनने की कोशिश करे तो पागल हो जाएगी। और अगर कान देखने की कोशिश करे तो पागल हो जाएगा। उनके आयाम अलग हैं, उनके डायमेन्शन अलग हैं।

विज्ञान और धर्म का क्षेत्र ही अलग है। वे कहीं एक दूसरे को 'ओवर-लैप' नहीं करते, एक दूसरे के ऊपर नहीं आते—अलग-अलग हैं। इसलिए कोई झगड़ा भी नहीं, कोई कलह भी नहीं है। न तो विज्ञान धर्म को गलत सिद्ध कर सकता है और न सही। और न धर्म विज्ञान को गलत सिद्ध कर सकता है और न सही। उनका कोई संबंध ही नहीं है। उनके यात्रा-पथ अलग हैं, उनका कहीं मिलना नहीं होता।

इसलिए दोनों की भाषा को अलग रखने की कोशिश करें, तो आपके अपने जीवन में सुविधा बनेगी। जहां पदार्थ की बात सोचते हों वहां विज्ञान की सुनें और जहां चेतना की बात सोचते हों, वहां विज्ञान की बिल्कुल मत सुनें—वहां धर्म की सुनें। और इन दोनों को मिलाएं मत। इन दोनों को आपस में गड्ड-मड्ड मत करें; अन्यथा आपका जीवन एक कन्फ्यूजन हो जाएगा।

तो डा० जैक्सन ओ कहते हैं, वे ठीक कहते हैं। उन्होंने एक कीमती बात खोजी। लेकिन वह आत्मा का वजन नहीं है। वह ज्यादा से ज्यादा प्राणवायु का वजन हो सकता है, आत्मा का कोई वजन नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है, गीता जैसे अमृत-तुल्य परम रहस्य उपदेश को भगवान ने अर्जुन को ही क्यों दिया? अर्जुन में ऐसी कौन-सी योग्यता थी कि वह इसके लिए पात्र था? इसका ऐसा कौन-सा श्रेष्ठ तप था?

कुछ बातें ख्याल में लेने जैसी हैं। वे गीता के समझने में उपयोगी होंगी। स्वयं को समझने में भी। अर्जुन का कोई भी तप नहीं है। तप की भाषा ही गलत है। अर्जुन का प्रेम है, तप नहीं है। तप की भाषा अलग है। तप की भाषा है, संकल्प की भाषा। एक आदमी कहता है कि मैं पाकर रहूंगा, अपनी सारी ताकत लगा दूंगा। जो भी त्याग करना है, करूंगा; जो भी खोना है, खोऊंगा; जो भी श्रम करना है, करूंगा—अपनी सारी ताकत लगा दूंगा।

आपको ख्याल है, हिन्दुस्तान में दो संस्कृतियां हैं। एक तो है—आर्य संस्कृति; और दूसरी है—श्रमण संस्कृति। श्रमण संस्कृति में जैन और बौद्ध हैं, आर्य संस्कृति में बाकी शेष लोग हैं। कभी आपने समझा, इस श्रमण शब्द का क्या अर्थ होता है? श्रमण का अर्थ है—श्रम करके ही पाएंगे। चेष्टा से मिलेगा परमात्मा, तप से, साधना से, योग से; मुफ्त नहीं लेंगे। प्रार्थना नहीं करेंगे, प्रेम में नहीं पाएगे; अपना श्रम करेंगे और पा लेंगे। एक सौदा है—जिसमें अपने को दांव पर लगा देंगे; जो भी जरूरी होगा करेंगे; भीख नहीं मांगेंगे, भिक्षा नहीं लेंगे; कोई अनुग्रह नहीं स्वीकार करेंगे।

तो महावीर परम श्रमण हैं। वे सब दांव पर लगा देते हैं। और घोर संघर्ष, घोर तपश्चर्या करते हैं, महातपस्वी कहा है उन्हें लोगों ने। बारह वर्ष तक निरन्तर खड़े रहते हैं—धूप में, छांव में, वर्षा में, सर्दी में। बारह वर्ष में कहते हैं कि सिर्फ तीन सौ साठ दिन उन्होंने भोजन किया। मतलब ग्यारह वर्ष भूखे, बारह वर्ष में। कभी एक दिन भोजन किया तो महीने भर भोजन नहीं किया, फिर दो महीने भोजन नहीं किया। सब तरह अपने को तपाया और तप के पाया।

यह समर्पण के विपरीत मार्ग है, संकल्प का। इसमें अहंकार को तपाना है और इसमें अहंकार को पूरी तरह दांव पर लगाना है। इसमें अहंकार को पहिले ही छोड़ना नहीं है, अहंकार को शुद्ध करना है। और शुद्ध करने की प्रक्रिया का नाम तप है—अहंकार को शुद्ध करने की प्रक्रिया का नाम तप है। जैसे सोने को हम आग में डाल देते हैं। सोना तप जाता है, जो भी कचरा होता है, जल जाता है। फिर निखालिस सोना बचता है।

महावीर कहते हैं, जब निखालिस अस्मिता बचती है तपने के बाद, सिर्फ 'मैं' का भाव बचता है, शुद्ध 'मैं' का भाव, तपते, तपते, तपते, तब आत्मा परमात्मा हो जाती है। वह शुद्धतम अहंकार ही आत्मा है। यह एक मार्ग है। इसमें सोने को तपाना जरूरी है।

एक दूसरा मार्ग है, जो समर्पण का है। जिसमें तपाने वगैरह की चिन्ता नहीं है। सोने को, कचरे को, सबको परमात्मा के चरणों में डाल देना है। सोने को कचरे से अलग नहीं करना है। कचरे सहित सोने को भी परमात्मा के चरणों में डाल देना है और कह देना है, जो तेरी मरजी, बस! समर्पण का अर्थ है—अपने को छोड़ देना है किसी के हाथों में। अब वह जो चाहे। यह छोड़ना ही घटना बन जाती है। यह प्रेम का मार्ग है। आप तभी छोड़ सकते हैं जब प्रेम हो।

संकल्प में प्रेम की कोई जरूरत नहीं है। समर्पण में प्रेम की जरूरत है। अर्जुन का प्रेम है कृष्ण से गहन। वही उसकी पात्रता है। वहां प्रेम ही पात्रता है। उसका प्रेम अतिशय है। उस प्रेम में वह इस सीमा तक तैयार है कि अपने को सब भांति छोड़ सका है। क्या घटना घटती है जब कोई अपने को छोड़ देता है? हमारी जिन्दगी का कष्ट क्या है, कि हम अपने को पकड़े हुए हैं—हम अपने को सम्हाले हुए हैं। यही हमारे ऊपर तनाव है, यही हमारे मन का खिचाव है कि मैं अपने को सम्हाले हुए हूं, पकड़े हुए हूं।

आपको पता है चिकित्सक कहते हैं कि अगर कोई आदमी बीमार हो और उसे नींद न आए तो बीमारी ठीक नहीं हो पाती, कोई भी बीमारी हो। बीमारी के ठीक होने के लिए नींद आना जरूरी है। क्यों? दवा से ठीक करें। लेकिन चिकित्सक पहले नींद की फिक्र करेगा, नींद की दवा देगा कि पहले नींद आ जाय। क्यों? क्योंकि आप बीमार हैं और जब तक

आप जग रहे हैं, आप बीमारी को जोर से पकड़े रहते हैं, उसको छोड़ते नहीं हैं। कांशस, चेतन, जकड़ बनी रहती है बीमारी की, आपकी छाती के ऊपर मन के ऊपर, मैं बीमार हूं, मैं बीमार हूं। नींद में गिरते ही सब आपके हाथ से छूट जाता है। और जैसे ही छूटता है वैसे ही प्रकृति काम शुरू कर देती है। सुबह तक आप बेहतर हालत में उठते हैं। रोज सांझ आप थके सोते हैं। क्यों थकते हैं आप ? थकते हैं इसलिए कि आपको लग रहा है कि मैं कर रहा हूं—मैं कर रहा हूं, तो थक जाते हैं। रात नींद में खो जाते हैं, सुबह ताजे हो जाते हैं; क्योंकि कम से कम रात आपको कुछ नहीं करना पड़ा, छोड़ दिया, जो हुआ।

नींद में आप गिर जाते हैं उस स्त्रोत में, जहां आपके श्रम की कोई भी जरूरत नहीं है। प्रेम जागते हुए नींद में गिर जाना है। थोड़ा कठिन लगेगा समझना। प्रेम का मतलब है होशपूर्वक, जागते हुए किसी में गिर जाना; और छोड़ देना अपने को कि अब मैं नहीं हूं, तू है। प्रेम एक तरह की नींद है जागृत। इसलिए प्रेम समाधि बन जाती है। कोई ध्यान करके पहुंचता है, तब बड़ा श्रम करना पड़ता है। कोई प्रेम करके पहुंच जाता है, तब श्रम नहीं करना पड़ता। लगेगा कि बहुत आसान है, लेकिन इतना आसान नहीं है। शायद ध्यान ही ज्यादा आसान है। अपने हाथ में है, कुछ कर सकते हैं। प्रेम आपके हाथ में कहां है, हो जाय, हो जाय; न हो जाय, न हो जाय।

लेकिन अगर छोड़ने की कला धीरे-धीरे आ जाय। हमें पता नहीं कि जिन्दगी में जो भी महत्वपूर्ण है, वह छोड़ने की कला से मिलता है। कुछ लोगों को नींद नहीं आती, इनसोमेनिया, अनिद्रा की बीमारी हो जाती है। हजार उपाय करने पड़ते हैं, फिर भी नींद नहीं आती। जितना वे उपाय करते हैं उतनी ही नींद मुश्किल हो जाती है। उन्हें एक सूत्र का पता नहीं है कि नींद चेष्टा से नहीं आ सकती। आपसे अगर कोई कहे आपको नींद आती है ? यहां काफी लोग होंगे जिनको नहीं आती होगी। और अगर आपको अब भी नींद आती है, तो आप प्रीमिटिव, थोड़े असभ्य हैं। सभ्य आदमी तो इतना बेचैन हो जाता है कि नींद-वींद; उसकी बुद्धि चलती रहती है। वह लाख कोशिश करता है सोने की, बुद्धि चलती चली जाती है।

लोग चेष्टा करते हैं। आज अमरीका में करीब-करीब पचास से साठ प्रतिशत लोग बिना सामक दवा के नहीं सो सकते। और अमरीकी मनस्-वैज्ञानिकों का कहना है कि इस सदी के पूरे होते-होते ऐसा आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा अमरीका में, जो बिना दवा के सो जाए। वह अनूठी चीज हो जाएगा कि कोई आदमी सिर रख लेता है तकिए पर और सो जाता है। ऐसे लोगों की तकलीफ है कि कैसे सोएं? तो कोई कहता है कि गिनती करो—एक से सौ तक, सौ से वापिस एक तक। कोई कहता है, मन्त्र पढ़ो। कोई कहता है, भगवत् नाम जपो। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। लोग करते भी हैं। और जितना करते हैं उतना ही पाते हैं कि नींद और भाग गई; क्योंकि नींद के आने का एक ही सूत्र है कि आप कुछ मत करें—आप चुपचाप पड़ जाएं ताकि नींद आ सके। जब आप नहीं करते हैं कुछ, तब नींद आती है। नींद के लाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। कुछ भी करना बाधा है। नींद उतरती है आपके ऊपर जब आप कुछ भी नहीं करते। अगर आपको नींद न आती हो तो मजे से पड़े रहें। और नींद न आने का मजा लेते रहें। नहीं आ रही, मजा है, नींद आ जाएगी। आप नींद के लिए सीधा कुछ मत करें। सीधी चेष्टा बाधा है।

फ्रांस के एक बहुत बड़े विचारक गहन अनुभवी कुवे ने एक सूत्र विकसित किया है, वह सूत्र है—'ला आफ रिवर्स इफेक्ट' विपरीत परिणाम का नियम। कुछ चीजें हैं कि जिनमें आप अगर प्रयास करें तो उल्टा परिणाम हाथ आता है। नींद वैसी ही चीज है, आपको उल्टा परिणाम हाथ आएगा। अगर आप लाने की कोशिश करेंगे, नींद नहीं आएगी। अगर आप सब छोड़ देंगे, थक जाएंगे कोशिश कर-करके छोड़ देंगे; नींद आ जाएगी। नींद गहन चीज है, आपके हाथ में नहीं है।

परमात्मा और भी गहन है, नींद तो प्रकृति है। परमात्मा और भी गहन है। वह आपके हाथ में बिल्कुल नहीं है। यह समर्पण के सूत्र के कहने वालों का नियम है कि आप परमात्मा को पकड़ने, खोजने की चेष्टा मत करें। आप सिर्फ अपने को उसमें छोड़ दें, जैसे नींद में छोड़ दें, डूब जाएं—कह दें कि तू है और मैं नहीं हूं। अब तुझे जो करना हो, उसके लिए मैं राजी हूं। नियति की बात इसमें सहयोगी होगी। केवल नियति को मानने

वाला ही पूरा समर्पण कर सकता है। जो मानता है कि मैं कुछ कर सकता हूं, वह समर्पण नहीं कर सकता।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संकल्प से नहीं पहुंचा जा सकता। संकल्प से लोग पहुंचे हैं। संकल्प से पहुंचा जा सकता है। मगर गीता का वह मार्ग नहीं है। और अर्जुन की वह पात्रता नहीं है। इसलिए अर्जुन ने कोई तप नहीं किया है। अगर आप प्रेम को ही तप कहें तब बात दूसरी है। प्रेम भी तप है। क्योंकि जो करता है, वह प्रेम में वैसे ही जलता है, जैसे कोई आग में जलता हो। और शायद प्रेम की आग और भी गहन आग है। और शायद साधारण आग ऊपर-ऊपर जलती होगी, प्रेम की आग भीतर तक राख कर जाती है।

अगर प्रेम को भी तप कहें तब मुझे कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तब भाषा को साफ समझ लेना जरूरी है। तप उनका मार्ग है—जो कहते हैं, हम कोशिश करके पा लेंगे। प्रेम उनका मार्ग है—जो कहते हैं, हमारी कोशिश से क्या होगा, हम असहाय हैं, तुम उठा लो। इसलिए तप के मार्ग पर ईश्वर को मानने की भी जरूरत नहीं है। महावीर ने ईश्वर को नहीं माना। बुद्ध ने ईश्वर को नहीं माना। प्राचीन योग सूत्रों ने कहा है कि मानो तो ईश्वर को ठीक, न मानो तो भी चलेगा। योग साधो घटना घट जाएगी। ईश्वर को मानने न मानने की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन प्रेम के मार्ग पर तो ईश्वर को मानकर ही चलना होगा, नहीं तो समर्पण कैसे करेंगे ? किसको समर्पण करिएगा ? ईश्वर यदि न हो तो अगर आप समर्पण कर सकते हैं, तो आप पा लेंगे परम अनुभूति, इसलिए प्रेम का मार्ग मानकर चलता है कि ईश्वर है परम केन्द्र जीवन का, अस्तित्व का। उसमें हम अपने को छोड़ देंगे। हम अपने तरफ से अपने को नहीं ढोते। प्रेम के पथिक का कहना है कि सब तरह के प्रयास ऐसे हैं, जैसे कोई आदमी अपने जूते के फीते पकड़कर खुद को उठाने की कोशिश करे। यह नहीं हो सकता, छोड़ दो !

कृष्ण के सामने अर्जुन की एक ही योग्यता है कि वह छोड़ सका—पूरा का पूरा। अगर आप भी छोड़ सकते हैं, तो जो अर्जुन को घटा, वह आपको भी घट जाय। नहीं छोड़ सकते हैं तो बेहतर है फिर अर्जुन के रास्ते

पर न चलें। फिर महावीर का रास्ता है, पातंजलि का रास्ता है—उस पर चलें। फिर चेष्टा करें, श्रम करें।

हम ऐसे बेईमान हैं कि हम दोनों के बीच समझौता खोज लेते हैं। चेष्टा भी नहीं छोड़ते और चाहते हैं मुफ्त में मिल भी जाय। कहते हैं हम अपने को छोड़ेंगे भी नहीं और वैसी ही घटना घट जाय, जैसी अर्जुन को घटी। पर अर्जुन को घटी इसलिए कि वह छोड़ सका।

आपको पता है, आप अगर जिन्दा आदमी हों और तैरना नहीं जानते तो नदी में डूबकर मर जायेंगे। अगर आपको नदी में फेंक दें और आप तैरना न जानते हों तो डूब के मर जाएंगे लेकिन क्या आपने एक बात कभी देखी है कि जब आप मर जाएंगे तब आपकी लाश ऊपर तैरने लगेगी, उसको नदी न डुबा सकेगी। बड़े मजे की बात है। जिन्दा आदमी डूब मरा, मुर्दे को नदी नहीं डुबा पा रही। मुर्दे की क्या खूबी है? मुर्दे की पात्रता क्या है? और आपकी क्या कमी थी? जिन्दा थे तब डूब मरे और अब मरकर मजे से ऊपर तैर रहे हैं। और नदी अब कुछ भी नहीं कर सकती। मुर्दे की एक ही पात्रता है, कि अब उसने नदी पर अपने को छोड़ दिया उसकी और कोई पात्रता नहीं है। अब वह लड़ नहीं सकता, यही उसकी योग्यता है। आप लड़ रहे थे, वही आपकी अयोग्यता थी। नदी से जो लड़ेगा वह डूबेगा। जिसको हम तैरने वाला कहते हैं, वह क्या सीख लेता है, आपको पता है? तैरना कोई कला थोड़े ही है। वह यही सीख लेता है कि नदी में मुर्दा कैसे हुआ जाय, बस! तैरना कोई कला है! तैरने में करते क्या हैं आप? हाथ-पैर थोड़े तड़फड़ा लेते हैं। वह भी जो सिक्खड़ है, वह तड़फड़ाता है। जो जानता है, वह हाथ-पैर छोड़कर भी नदी पर तैर लेता है। वह मुर्दा होना सीख गया। अब वह नदी से लड़ता नहीं है। वह नदी के खिलाफ कोई कोशिश नहीं करता। वह नदी को कहता है कि तू भी ठीक मैं तेरे साथ राजी हूं। वह तैरने लगता है।

नदी में मुर्दे की भांति हो जाएं तो आप अर्जुन हो जाएंगे। फिर कोई आपको डुबा न सकेगा। अर्जुन की योग्यता थी कि वह अपने को छोड़ सका। वही भक्त की योग्यता है।

एक मित्र ने पूछा है कि शायद मैं ठीक से समझ नहीं पाया। आप

कहते हैं, प्रार्थना में मांगें मत—कोई वासना, आकांक्षा न करें। क्या आपका यह मतलब है कि प्रार्थना में कुछ मांगा जाय तो वह पूरा नहीं होगा ?

नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। वह तो पूरा हो जाएगा, प्रार्थना बेकार हो जाएगी। आपने सस्ते में प्रार्थना बेच दी। जिससे परमात्मा मिल सकता था उससे आपने एक बेटा पा लिया, जिससे परमात्मा मिल सकता था उसमें आपने कोई नौकरी पा ली आपने या कुछ और पा लिया। मेरा यह मतलब नहीं है कि प्रार्थना में अगर आप मांगेंगे तो पूरा नहीं होगा, पूरा हो जायगा यही खतरा है। क्योंकि तब आप प्रार्थना के साथ गलत संबंध जोड़ लेंगे और व्यक्ति की मांग प्रथम हो जायगी, पूरा हो जाएगा। पूरा इसलिये नहीं हो जायगा कि परमात्मा आपकी प्रार्थना पूरी करने में लगा है, इसलिए भी नहीं, क्योंकि आपकी क्षुद्र प्रार्थनाओं का क्या मूल्य है ? प्रार्थना इसलिए पूरी हो जाती है कि प्रार्थना अगर आपने पूरे भाव से की है, तो आप ही उसके पूरे करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। अगर आपने प्रार्थना पूरे भाव से की है तो आपका मन सशक्त हो जाता है। अगर आपने प्रार्थना पूरे भाव से की है, तो आपके मन की शक्ति ही उस प्रार्थना के कार्य को पूरा करवा देती है। कोई आपकी प्रार्थना में आ नहीं रहा, आप अकेले हैं। वह मोनोलाग है, एकालाप है। उसमें कोई दूसरा उत्तर नहीं दे रहा है। लेकिन अगर आपने बलपूर्वक कोई प्रार्थना की है, तो उस प्रार्थना को बलपूर्वक करने में आप बलशाली हो गए। और वह जो बलशाली हो जाना है आपके मन का, वही सूक्ष्म शक्तियों को विकीर्णित कर देता है और घटना घट जाती है। अगर सन्देह से की है तो घटना नहीं घटती। क्योंकि सन्देह अगर साथ मौजूद है, तो आप बलशाली हो ही नहीं पाते।

लेकिन प्रार्थना पूरा कर देगी, आप जो भी मांगेंगे पूरा हो जाएगा—यह मेरा मतलब नहीं था। मेरा मतबल यह था कि जब आप मांगते हैं तब यह प्रार्थना नहीं रही, मांग ही हो गई। प्रार्थना तो वह शुद्ध क्षण है जब आपका और विराट का मिलन होता है। वहां छोटी-छोटी मांगें बीच में खड़ी न करना। उन क्षुद्र बातों के कारण आड़ पड़ जाएगी। और छोटी-छोटी चीजें इतनी बड़ी आड़ बन जाती हैं जिसका हिसाब नहीं। कभी ख्याल किया, आंख में एक छोटा-सा तिनका चला जाय, और सामने हिमालय भी खड़ा हो तो फिर हिमालय भी दिखाई नहीं पड़ता, आंख बंद हो जाती है।

एक छोटा-सा तिनका पूरे हिमालय को ढंक देता है। आंख ही बन्द हो जाती है।

छोटी-सी मांग आंख को बन्द कर देती है। फिर परमात्मा सामने भी खड़ा हो तो दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा के पास मांगते हुए मत जाना। इसका यह मतलब नहीं है कि आपके मन की ताकत नहीं है, आपके मन की बड़ी ताकत है। और अगर आप पूरे भरोसे से कोई बात को तय कर लें, वह हो जाएगी। उसको कोई परमात्मा बीच में आकर पूरा करने नहीं आता, आप ही पूरा कर लेते हैं। इतने के लिए तो आप भी काफी परमात्मा हैं। यह जो मन की क्षमताएं हैं, अगर आप कोई विचार बहुत गहरे मन में ले लेते हैं, तो आपका मन उस विचार को पूरा करने में संलग्न हो जाता है। और आपके पास न मालूम कितनी सूक्ष्म शक्तियां हैं, जिनका आपको पता नहीं है, जिनका आपको ख्याल नहीं है।

समझें, आपको नौकरी नहीं मिल रही है। आप पच्चीस इन्टरव्यू दे आए और जहां भी जाते हैं वहीं से खाली हाथ लौट आते हैं। कभी आपने सोचा कि जब इंटरव्यू देकर खाली हाथ लौटते हैं, तो उसमें इंटरव्यू लेने वाले का तो थोड़ा हाथ है ही, आपका भी काफी हाथ है। ज्यादा आपका ही हाथ है। आप जिस ढंग से प्रवेश करते हैं उसके दफ्तर में, आपकी शक्ल-सूरत आपने जैसी बना रखी है, कुटी-पिटी, हारी हुई; भीतर से आप डरे हुए हैं और पहले ही से सोच रहे हैं कि नौकरी तो मिलनी नहीं है। ये वायब्रेशन्स आप लेकर उसके दफ्तर में प्रवेश करते हैं। वह आपकी तरफ देखते ही निगेटिव हो जाता है। आप उसको निगेटिव कर रहे हैं। आप उसको नकार से भर देते हैं। आपको देखते ही उसके मन में आकर्षण पैदा नहीं होता कि खींच ले आपको पास या आपके पास खिच जाय। ऐसा लगता है कि कब आदमी यह बाहर निकले। और जैसे ही आप उसके चेहरे पर देखते हैं कि इसको लग रहा है कि कब यह आदमी निकले, आप और कंप जाते हैं, आप पक्का हो जाता है कि गई, यह नौकरी भी गई। यह आप ही कर रहे हैं।

अगर आप प्रार्थना कर सकें किसी मन्दिर में जाकर, चाहे वहां कोई देवता हो या न हो, यह सवाल बड़ा नहीं है। असली हो देवता, नकली हो, यह भी सवाल नहीं है। अगर आप किसी मन्दिर में जाकर प्रार्थना कर सकें, पूरे भरोसे के साथ, यह प्रार्थना किसी देवता को नहीं बदलेगी, आपको बदल

देगी। आप उस मन्दिर से जब लौटेंगे अब भरोसा होगा, आत्म विश्वास होगा, पैरों में ताकत होगी, आंखों में रौनक होगी। और जब आप दफ्तर में प्रवेश करेंगे किसी नौकरी के, तो आपके भीतर एक 'यश-मूड' होगा, एक 'हां' का भाव होगा कि नौकरी मिलने वाली है, प्रार्थना पूरी होने वाली है। अब कोई रोक नहीं सकता, परमात्मा मेरे साथ है। यह जो आप भीतर प्रवेश कर रहे हैं, आपकी तरंगें अब दूसरी हैं, पॉजिटिव हैं, विधायक हैं। जो भी आदमी आपको देखेगा, वह खिंचेगा, आकर्षित होगा—आप मैग्नेट बन गए।

प्रार्थना ने किसी परमात्मा के विचार को नहीं बदला, प्रार्थना ने आपको बदल दिया। और आपकी प्रार्थनाएं परमात्मा के विचार को कैसे बदल पाएंगी ? इसका तो मतलब यही हुआ कि जब तक आपने प्रार्थना नहीं की थी परमात्मा कुछ गल्ती में था। आपने सलाह दी तब उनको अक्ल आई। अब तक नौकरी नहीं दिलवा रहे हैं या तो इसका यह मतलब होता है, या इसका यह मतलब होता है कि रिश्वत की तलाश में था भगवान कि जब तक आप हाथ-पैर न जोड़ो, फूल-पत्ते न चढ़ाओ, नारियल न पटको, सिर न पटको उनके पैरों में तब तक वे राजी न होंगे। आपकी स्तुति की खोज थी, खुशामद, कोई रिश्वत। यह तो ब्लेक मेलिंग है। आदमी को नौकरी दिलवाना है तो पहले सिर पटकवाओ।

नहीं। न परमात्मा आपकी रिश्वत की तलाश में है, न आपकी स्तुति की, न आपकी प्रार्थना की। लेकिन जो आप कर रहे हैं, वह उससे आप बदल रहे हैं। आप दूसरे आदमी होकर प्रवेश कर रहे हैं। यह जो आपका आकर्षण है—पॉजिटिव बिन्दु का, विधायक बिन्दु का—इसका परिणाम होगा, नौकरी मिल सकती है। और नौकरी मिल जाएगी, तो आपका एक भाव दृढ़ हो जाएगा कि प्रार्थना से मिली। अब आप और मजबूत हो जाएंगे, अब दुबारा किसी दूसरी जगह प्रार्थना करके पाएगे, तो आपके पैरों की ताकत अलग होगी, आप हवा में उड़ेंगे। यह आत्मविश्वास काम करता है। प्रार्थना आत्म-विश्वास देती है। आत्मविश्वास आपकी शक्तियों को विधायक बना देता है। अविश्वास अपने को नकारात्मक बना देता है। तो यह मैंने नहीं कहा कि प्रार्थना करेंगे तो कोई मांग पूरी नहीं होगी। पूरी हो जाएगी यही खतरा है। पूरी न होती तो शायद आप कभी न कभी प्रार्थना में मांग बन्द कर देते। वह पूरी हो जाती है, तो मांग आदमी जारी रखता है। धन्यभागी हैं वे,

जिनकी प्रार्थनाएं कभी पूरी नहीं होतीं। चूंकि तब उनको समझ में आ जाएगा कि प्रार्थना में मांग व्यर्थ है। तो शायद किसी दिन उस सार्थक प्रार्थना को कर सके, जिसमें मांग नहीं होती, सिर्फ भाव होता है।

ठीक से समझ लें, प्रार्थना मांग नहीं दान है। अगर आप परमात्मा को देने गए हैं, तो प्रार्थना है, अगर उससे कुछ लेने गए हैं, तो प्रार्थना नहीं है।

अब हम सूत्र को लें :

"इस प्रकार के मेरे इस विकराल रूप को देखकर तेरे को व्याकुलता न होवे और मूढ़ भाव भी न होवे और भयरहित, प्रीतियुक्त मन वाला तू उस ही मेरे शंख, चक्र, गदा, पद्म सहित चतुर्भुज रूप को फिर देख।"

कृष्ण ने कहा कि मैं लौट आता हूं वापिस, साकार में; ताकि तुझे भय न होवे। तेरे मन को राहत मिले, सान्त्वना मिले; इसलिए मैं अपने उसी रूप में वापिस लौट आता हूं, जिसकी तू मांग कर रहा है।

यहां एक बात समझ लेने जैसी जरूरी है, कि विराट का और व्यक्ति का सम्बन्ध मां और बेटे का सम्बन्ध है। कहता हूं—मां और बेटे का, बाप और बेटे का नहीं, सोचकर। पीछे आपसे बात करूंगा। विराट और व्यक्ति के बीच जो सम्बन्ध है, वह मां और बेटे का सम्बन्ध है; क्योंकि हम विराट से उत्पन्न होते हैं। उसकी ही लहरें हैं। उसकी ही तरंगें हैं। हम हैं। वही हममें खिला। वही हममें फूल-पत्ता बना। वही हमारा व्यक्तित्व है।

तो हमारे और विराट के बीच जो सम्बन्ध है, वह वही होगा जो एक मां और बेटे के बीच है; क्योंकि मां के गर्भ में बेटा होता है—उसके अंग की भांति, उसके शरीर की भांति, कुछ भेद नहीं होता। मां मरेगी तो उसका बेटा मर जाएगा, और बेटा भीतर मर जाए तो मां की मौत घट सकती है। दोनों एक हैं। एक से ही जुड़े हैं। बेटा अपनी सांस भी नहीं लेता, मां से ही जीता है। मां का ही प्राण उसका प्राण है। मां के साथ एक है, जैसे लहर सागर के साथ एक है। फिर यह बेटा पैदा होगा। तो जैसे मां का ही एक हिस्सा बाहर गया। जैसे मां का ही एक अंग अनन्त की यात्रा पर निकला। यह कहीं भी रहे, कितना ही दूर रहे, मां से बहुत सूक्ष्म तन्तुओं से जुड़ा रहता है।

अगर सच में ही मां और बेटे की घटना घटी हो। सच में इसलिए कहता हूं कि सभी के भीतर नहीं भी घटती, कुछ माताएं केवल जननी होती हैं, माताएं नहीं। कोई बहुत भाव से जन्म नहीं देतीं। एक जबरदस्ती थी, एक बोझ था, एक काम था, निपटा दिया। इन माताओं का बस चलेगा तो आज नहीं कल, जैसा आज वे बच्चे के पैदा होने के बाद नर्स को पालने के लिए रख लेती हैं। आज नहीं कल वे किसी नर्स को गर्भ के लिए भी रख लेंगी। और पश्चिम में उपाय हो गये हैं अब, कि आपका बेटा किसी दूसरे के गर्भ में पैदा हो सकता है। तो जो सुविधा सम्पन्न हैं, वे अपने गर्भ में बड़ा नहीं करेंगी, वे किसी और के गर्भ में बड़ा करेंगी।

मां का तो मतलब यह है कि इस बेटे में मैं जन्मी—इस बेटे में मेरा जीवन आगे फैला, जैसे वृक्ष की एक शाखा दूर आकाश में निकल जाय, बस ठीक मेरी एक शाखा आगे गई। जीवन इतना इकट्ठा मालूम पड़े जिस मां को भी, उसके बेटे के बीच हजारों मील के बीच भी सम्बन्ध होता है। इस पर बड़ा काम हुआ है। और अगर बेटा बीमार पड़ जाय, तो मां बेचैन हो जाती है। हजारों मील के फासले पर अगर बेटा मर जाय, तो मां को तत्क्षण आघात पहुंचता है।

अभी रूस के कुछ वैज्ञानिक पशुओं के साथ प्रयोग कर रहे थे तो बहुत चकित हुए और पता चला कि पशुओं में मातृत्व शायद ज्यादा है मनुष्यों की बजाय। खरगोश पर वे प्रयोग कर रहे थे। तो खरगोश के बच्चों को रखा गया ऊपर और उनकी मां को ले गए नीचे समुद्र में—एक पनडुब्बी में। और उन्होंने बच्चों को ऊपर सताना शुरू किया, मां वहां बेचैन हो गई। उन्होंने सब यन्त्र लगा रखे थे, ताकि उसकी बेचैनी नापी जा सके कि कितनी परेशान है। और जब उन्होंने बच्चों को मार डाला, तो उसकी परेशानी का कोई अन्त नहीं कि वह बेहोश हो गई परेशानी में।

यह प्रयोग कोई सौ बार किया। और हर बार अनुभव हुआ कि वह खरगोश और उसकी मां के बीच समय और स्थान का कोई फासला नहीं है। उनके भीतर कुछ अन्तरंग वार्ता चल रही है निरन्तर, कोई अन्तरंग संबंध चल रहा है, कोई ध्वनि तरंगें उन दोनों को जोड़े हुए है।

मां और बेटे के बीच जैसा सम्बन्ध है, उससे भी गहन, उदाहरण के लिए कह रहा हूं मां और बेटे का, अस्तित्व और आपके बीच सम्बन्ध है।

आप अस्तित्व के ही हिस्से हैं। अस्तित्व ही आपमें फैल गया है और दूर तक आप अस्तित्व हैं। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि अस्तित्व आपको दुख नहीं देना चाहता। अस्तित्व आपको भयभीत भी नहीं करना चाहता। क्यों करना चाहेगा? मां बेटे को क्यों दुख देना चाहेगी? अस्तित्व आपको परेशान नहीं करना चाहता और अगर आप परेशान हैं, वह आप अपने ही कारण हैं। अगर भयभीत हैं तो अपने ही कारण होंगे। अगर दुखी हैं तो अपने ही कारण होंगे। अस्तित्व आपको दुखी नहीं करना चाहता। जीवन तो आपको पूरे आनन्द का मौका, सुविधा, अवसर, सामर्थ्य सब देता है। आप ही कुछ गड़बड़ कर लेते हैं। आप ही बीच में खड़े हो जाते हैं और अस्तित्व और अपने बीच बाधा बन जाते हैं।

यह जो कृष्ण का कहना है कि मैं वापिस लौट आता हूं। यह इसका सूचक है, कि अस्तित्व से जो भी आप गहन भाव से प्रार्थना करेंगे, अस्तित्व से जो भी आप गहन भाव से कहेंगे, प्रेमपूर्वक अस्तित्व से जो भी आप निवेदन करेंगे; अस्तित्व बहरा नहीं है, अस्तित्व हृदयहीन नहीं है। यहीं विज्ञान और धर्म की समझ का भेद है। विज्ञान कहता है—अस्तित्व है हृदयहीन, हार्टलेस; कुछ भी करो, अस्तित्व तुम्हारी सुनने वाला नहीं है; कुछ भी करो, अस्तित्व के पास कान नहीं है कि तुम्हारी सुने; कुछ भी करो अस्तित्व को पता भी नहीं चलेगा। यह विज्ञान की दृष्टि है—अस्तित्व है उपेक्षा में। तुम क्या हो, हो या नहीं हो, कोई प्रयोजन नहीं है।

धर्म कहता है—यह असंभव है। अगर हम अस्तित्व के ही हिस्से हैं, तो यह असंभव है कि अस्तित्व हमारे प्रति इतनी उपेक्षा से भरा हो। अस्तित्व हमारे प्रति किसी गहरे लगाव में न हो—यह नहीं माना जा सकता, क्योंकि हम अस्तित्व से पैदा हुए। अगर हम अस्तित्व से ही पैदा हुए हों, और उसी में लीन हो जाएंगे, तो हम उसी का खेल हैं। तो अस्तित्व प्रतिपल हमारे प्रति सजग है। और अस्तित्व हृदयपूर्ण है।

वह जो मुसलमान अपनी मस्जिद के मीनार पर खड़े होकर अजान दे रहा है, कबीर ने उसकी खूब मजाक की है। वह मजाक एक अर्थ में सही और एक अर्थ में बिलकुल गलत है। कबीर ने कहा है कि क्या तेरा खुदा बहरा हो गया है, जो तू इतने जोर से चिल्ला रहा है। यह बात सच है इतने जोर से चिल्लाने की कोई जरूरत भी नहीं है। मौन में भी कहा जा सकता है, तो

भी वह सुन लेगा। यह मतलब है कबीर का। लेकिन यह जो जोर से चिल्ला रहा है इसकी भी एक सचाई है। यह असल में यह कह रहा है कि मैं तो बहुत कमजोर हूं, मेरी आवाज तुझ तक पहुंचे, न पहुंचे। तो अपनी पूरी ताकत लगाकर चिल्ला रहा हूं। और यह भरोसा है मेरा कि तू बहरा नहीं है, सुन ही लेगा। जोर से इसलिए नहीं चिल्ला रहा हूं कि तू बहरा है; जोर से इसलिए चिल्ला रहा हूं कि मैं कमजोर हूं। तो कबीर की बात एक अर्थ में ठीक है, खुदा बहरा नहीं है; लेकिन दूसरी बात में गलत है। यह जो अजान देने वाला है, यह कमजोर है। यह सिर्फ अपनी कमजोरी जाहिर कर रहा है, यह कह रहा है, मैं असहाय हूं। बच्चा देखता है कि मां नहीं है पास, तो जोर से चिल्लाने लगता है, रोने लगता है। इसलिए नहीं कि मां बहरी है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि बच्चा कमजोर है। उसकी आवाज का खुद ही उसे भरोसा नहीं है, इसलिए जोर से चिल्ला रहा है।

यह जो सूत्र है—कृष्ण कहते हैं मैं वापिस लौटे आता हूं। यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व वैसा ही हो जाएगा जैसी आपकी गहरी मौन प्रार्थना होगी, गहरा भाव होगा, अस्तित्व वैसा ही राजी हो जाएगा। इसके बड़े इंप्लीकेशंस, इसकी बड़ी रहस्यपूर्ण उत्पत्तियां हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आप जो भी कर रहे हैं, वह भी अस्तित्व ने रूप ले लिया है आपकी वासनाओं के कारण। आपने मांगी थी एक सुन्दर स्त्री, वह आपको मिल गई। आपने मांगा था एक मकान, वह घटित हो गया। आपने चाहा था एक सुन्दर शरीर वह हो गया। आप कहेंगे, नहीं होता। मांगी थी सुन्दर स्त्री, मिल गई कुरूप। मांगा था सुन्दर स्वस्थ शरीर, मिल गई बीमारियों वाली देह।

लेकिन उसमें भी आप ख्याल करें कि उसमें भी आपकी ही मांग रही होगी। आपको जो भी मिल गया है, उसमें कहीं न कहीं आपकी मांग रही होगी। आपकी मांगें बड़ी कंट्राडिक्टरी हैं, विरोधाभासी हैं, इसलिए दिक्कत में है। अस्तित्व भी बड़ी दिक्कत में होता है, क्योंकि आप एक तरफ से जो मांगते हैं, दूसरी तरफ से खुद ही गलत कर लेते हैं।

अभी एक लड़की मेरे पास आई और उसने कहा कि मुझे पति ऐसा चाहिए शेर जैसा, सिंह हो, दबंग हो; लेकिन सदा मेरी माने। अब मुश्किल

हो गई। अब इनको अगर ऐसा पति मिलेगा, जो देखने में शेर हो और भीतर से भेड़-बकरी तब इसको तकलीफ होगी। उसकी मांगें विरोधी हैं। जो दबंग होगा वह तुझसे क्यों दबेगा, वह सबसे पहले तुम्हीं को दबाएगा। सबसे निकट तेरे को पाएगा। अब यह इसकी—स्त्री की जो मांग है, वह विरोधाभासी है, कन्ट्राडिक्टरी है; हालांकि उसे ख्याल भी नहीं है।

पुरुष ऐसी स्त्री चाहता है, जो बहुत सुन्दर हो। स्त्री तो चाहता है जो बहुत सुन्दर हो, लेकिन साथ में वह ऐसी स्त्री भी चाहता है, जो कि पक्की पतिव्रता हो। साथ में वह यह भी चाहता है कि किसी आदमी की नजर मेरी स्त्री की तरफ बुरी न पड़े। अब वह सब उपद्रव की बातें चाह रहा है। बहुत सुन्दर स्त्री होगी, दूसरों की नजर भी उस पर पड़ेगी और ध्यान रहे, बहुत सुन्दर स्त्री भी बहुत सुन्दर पुरुष की तलाश कर रही है, आपकी तलाश नहीं कर रही है! तो पतिव्रता होना जरा मुश्किल है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बहुत देर तक अविवाहित रहा। लोग उससे पूछते कि मुल्ला, विवाह क्यों नहीं कर लेता? वह कहता कि मैं एक पूर्ण स्त्री की तलाश कर रहा हूं—सर्वांग सुन्दर। तो लोगों ने पूछा, तुम बूढ़े हुए जा रहे हो, तलाश कब पूरी होगी? क्या इतने दिन से खोजते-खोजते तुम्हें कोई पूर्ण स्त्री नहीं मिली? उसने कहा; एक दफे मिली; लेकिन मुसीबत, वह भी किसी पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही थी। मिली, बाकी मैं उसके योग्य नहीं था।

हमारी वासनाएं हैं विरोधी। हम जो मांग करते हैं, वे एक दूसरे को काट देती हैं। अस्तित्व हमारी सब मांगें पूरी कर देता है, यह जानकर आप हैरान होंगे। लेकिन आपको पता ही नहीं, आप क्या मांगते हैं। कल जो मांगा था, आज इन्कार कर देते हैं। आज जो मांगते हैं, सांझ इन्कार कर देते हैं। आपको पता ही नहीं कि आपने इतनी मांगें अस्तित्व के सामने रख दी हैं कि अगर वो सब पूरी करे तो आप पागल होंगे ही, कोई और उपाय नहीं है। जिन्होंने धर्म में गहन प्रवेश किया है वो जानते हैं कि आदमी की जो भी मांगें हैं, वो सब पूरी हो जाती हैं। यही आदमी की हार है कि अस्तित्व राजी है, जरा सोच-समझकर उससे मांगना। बेहतर है मत मांगना, उसी पर छोड़ देना कि जो तेरी मर्जी। तब आपकी जिन्दगी में कष्ट नहीं होगा, क्योंकि अब उसकी मर्जी में कोई विरोध नहीं है। समर्पण का यही

अर्थ है कि तू जो ठीक समझे, करना। हममें से जो बड़े से बड़े लोग हैं, वो भी इतनी हिम्मत नहीं कर पाते। जीसस सूली पर लटके हैं, आखिरी क्षण में जब फांसी लगने लगी और हाथ-पैर में खीले ठोंक दिए गए, तो जीसस के मुंह से निकला कि हे परमात्मा! यह मुझे क्या दिखा रहा है? मतलब साफ था कि जीसस ने सोचा नहीं था कि तू मुझे ये दिखाएगा। ये कभी सोचा नहीं था कि तेरे भक्त को, तेरे इकलौते बेटे को इतनी तकलीफ देखनी पड़ेगी! इसमें सब बात आ गई, लेकिन जीसस बड़े सचेत आदमी थे। तत्क्षण समझ लिया कि भूल हो गई—इस बात को बोलते ही कि तू क्या दिखा रहा है, दूसरा वाक्य उन्होंने कहा—तेरी मर्जी पूरी हो, 'दाई विल बी डन।' इसी क्षण में जीसस, क्राइस्ट हो गए। इस एक वाक्य को बोलने में जीसस दूसरे ही क्षण क्राइस्ट हो गये।

एक क्षण पहले ही जीसस की आवाज कि तू ये क्या दिखा रहा है, यह मनुष्य की आवाज है। ये सब मनुष्य की वासनायें ईश्वर के प्रतिकूल खड़ी हैं। मनुष्य कह रहा है कि आखिरी मेरी इच्छा पूरी होना चाहिए। मेरी इच्छा पूरी कर, तो ही मैं प्रसन्न रहूंगा। मेरी प्रसन्नता में शर्त है, जो मैं चाहता हूं—वो हो। और आदमी को पता नहीं कि वह जो चाहता है अगर पूरा हो जाए, तो वह कभी प्रसन्न नहीं होगा। एक क्षण में जीसस ने कहा कि 'दाई विल बी डन', तेरी मर्जी पूरी हो। यहां आदमी समाप्त हो गया, इसी क्षण जीसस मरियम का बेटा—ईश्वर का बेटा क्राइस्ट हो गया। जीसस मर गया सूली के पहले, सूली जीसस को नहीं लगी, वो तो जीसस उसी क्षण समाप्त हो गया जिस क्षण उसने कहा—तेरी मर्जी। इसलिए फिर सूली—सूली नहीं, फिर सूली आनन्द है। फिर सूली भी उसके मिलन का द्वार है। फिर वो चाहता है सूली, तो यही प्रेम है उसका, कोई फर्क नहीं है। कृष्ण ने कहा मैं पूरा किए देता हूं, जैसा अर्जुन चाहता है वैसा हो जाता हूं।

वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कहकर, फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखाया और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्य मूर्ति होकर, इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया।

कहा वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति दयावान होकर, अपने चतुर्भुज रूप को ग्रहण किया। फिर महात्मा कृष्ण ने, फिर भगवान कृष्ण नहीं

कहा; क्योंकि जैसे ही सीमा में बंध गए, भगवान छूटकर महात्मा हो गए, महात्मा और परमात्मा में इतना ही फर्क है, परमात्मा अपनी मर्जी के अनुकूल नहीं चलता, आपको उसकी मर्जी के अनुकूल होना पड़ेगा। महात्मा आपकी मर्जी के अनुकूल होकर, आपको धीरज और सांत्वना दिलाता है। ईश्वर आपकी मर्जी के अनुकूल नहीं है, इससे जो मरने को तैयार है, वो ईश्वर में प्रवेश करें। लेकिन अगर हमारी मांग सीमा की है तो महात्मा प्रगट होता है। महात्मा ईश्वर का वह रूप है, जो हमारे अनुकूल हो। इसलिए कृष्ण को हमने पूर्ण अवतार कहा, क्योंकि बहुत जगह वो हमारे अनुकूल नहीं हैं। राम को हमने आंशिक अवतार कहा, क्योंकि वे बिल्कुल हमारे अनुकूल हैं। राम ने भूल-चूक कहीं नहीं की, कृष्ण में भूल-चूक काफी हैं। राम और सीता का संबंध समझ में आता है, कृष्ण और गोपियों का संबंध, सज्जन से सज्जन आदमी को शंका में डाल देता है। ऐसा लगता है कि यह बात न ही उठाओ। कृष्ण में कुछ है जो हमें डराता है, इसलिए हमने उन्हें पूर्ण अवतार कहा है—क्योंकि हम उनसे कई जगह राजी नहीं हैं। हम इतने अधूरे हैं कि उनके अधूरे व्यक्तित्व को स्वीकार करते हैं, राम को हमने अपूर्ण अवतार कहा क्योंकि हम उनसे पूरे राजी हो जाते हैं। हम राजी हो जाते हैं, वे हमारे इतने अनुकूल हैं कि वे पूरे नहीं हो सकते, बात जाहिर है। इसलिए व्यास कहते हैं महात्मा कृष्ण ने सौम्य मूर्ति होकर, इस भयभीत हुए अर्जुन को धीरज दिया।

इसके उपरांत अर्जुन बोला : हे जनार्दन! आपके इस अति शांत मनुष्य रूप को देखकर अब मैं शांत चित्त हुआ, अपने स्वभाव को प्राप्त हो गया हूं।

अर्जुन ने कहा ये देखकर आपका सीमा में लौट आना, मैं अपने स्वभाव को : ये स्वभाव क्या है अर्जुन का—मनुष्य का स्वभाव। वह कहता है : ऐसे हो जाओ, ऐसे होओगे, तो ही मैं शांति को प्राप्त होऊंगा।

सुना है मैंने कि तुलसीदास एक बार कृष्ण के मंदिर में गए, तो वे तो थे राम-भक्त, और वे तो धनुर्धारी राम को ही सिर झुका सकते थे। वहां देखा कि कृष्ण बांसुरी लिए खड़े हैं, तो कहा गया है कि तुलसीदास ने कहा कि ऐसे नहीं, जब तक धनुष बाण हाथ में न लोगे, तब तक मैं न झुकूंगा। एक अर्थ में यह बड़ी अजीब सी बात है, हम भगवान को भी शर्त लगाते हैं

कि ऐसे हो जाओ, तो ही। मेरे अनुकूल हो जाओ, तो ही। इसका तो मतलब ये हुआ, कि भक्त भगवान को भी बांधता है, सोचता है भगवान मुझे मुक्त करे, लेकिन कर यह रहा है कि मैं भी भगवान को बांध लूं। और इसका अर्थ यह भी है कि मैं हूं मनुष्य, मेरी प्रीति-अप्रीति, मेरे लगाव-अलगाव, मैं तुम्हें उस रूप में देखना चाहता हूं—जो मेरे अनुकूल हो। और इसलिए देखना चाहता हूं इस रूप कि मैं जैसा हूं, वैसा का वैसा तुम्हारे चरणों में गिर सकूं। मेरा जैसा स्वभाव है, उसका ध्यान रखो। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम्हारा बांसुरी लिए जो रूप है, वह भगवान का नहीं है, वह होगा; मेरे लिए नहीं। मेरी पात्रता ने उस रूप को स्वीकार किया है कि तुम धनुष-बाण लेकर राम हो जाओ तो मैं तुम्हारे चरणों में समर्पित हो जाऊं। कथा बड़ी मीठी है, कथा यह है कि मूर्ति बदल गई और कृष्ण की मूर्ति की जगह राम धनुष-बाण लिए दिखे, तब तुलसीदास चरणों में गिरे।

अर्जुन कह रहा है अब मैं अपने स्वभाव में आ गया। अर्जुन अपने स्वभाव के बाहर चला गया था, एक अर्थ में चला गया था। और एक अर्थ में अपने स्वभाव के गहरे में चला गया। एक अर्थ में बाहर चला गया था क्योंकि मनुष्य की बुद्धि के जो परे है, वह उसके दर्शन में आ गया था। और वह भयभीत हो गया, उसकी सारी की सारी मनुष्यता डवांडोल हो गई। मनुष्य की पकड़ में न आ सके, ऐसा उसे दिख गया, और एक अर्थ में वह अपने गहरे स्वभाव में चला गया। लेकिन वह स्वभाव जागतिक है वह मनुष्य का नहीं है, अर्जुन कहता है कि मैं अपने स्वभाव में आ गया।

परमात्मा के साथ साधक और भक्त का यही फर्क है—साधक कहता है तुम जैसे हो वैसा ही मैं देख लूंगा अपने को बीच में नहीं लाऊंगा। वह संकल्प कर रहा है, अगर तुम ऐसे हो तो अपने को बदलूंगा, अपनी नई आंख पैदा करूंगा, तुम जैसे हो, वैसे ही तुम्हें देखूंगा। साधक अपनी कोई धारणा उस पर नहीं थोपता, अपनी सब धारणा छोड़ देता है।

सत्य जैसा है उसे तुम वैसा ही देखने को राजी होना, उसके लिए खुद को, जितना खुद को तपाना पड़े, गलाना पड़े, मिटाना पड़े—मिटाना, लेकिन खुद को तोड़ना, खुद को निखारना, उस पर कोई आग्रह मत करना कि ऐसा हो। साधक संकल्प से आपने को बदलता है और एक दिन जिस दिन शून्य हो जाता है शांत, सत्य को देख लेता है।

भक्त, कहता है कि मैं जैसा हूं—हूं। मैं अपने को बदलने वाला नहीं हूं, तुम्हें ही बदलना है। और जब तक मैं ऐसा हूं तब तक मेरी शर्त है कि तुम ऐसे प्रगट होओ। भक्त कहता कि जब तक मैं नहीं बदला हूं और मैं अपने को क्या बदल सकूंगा, तुम्हीं बदल सकोगे। और तुम भी मुझे तभी बदल सकोगे जब मेरे से ताल-मेल बैठ सकेगा। मैं जैसा हूं, उससे ही संबंध बनाओ। मैं तुम्हें कृष्ण की तरह, राम की तरह, क्राइस्ट की तरह चाहता हूं ताकि मेरा सम्बन्ध बन जाय। सम्बन्ध बन जाय तो फिर तुम मुझे बदल लेना। यह बड़ी मजेदार बात है। भक्त यह कह रहा है कि मैं अपने को क्या बदलूं, कैसे बदलूंगा, मुझे कुछ भी तो पता नहीं है। मेरी सामर्थ्य, शक्ति भी कितनी है कि कैसे मैं अपने को शुद्ध करूंगा, मैं तो अशुद्ध जैसा भी हूं—यह हूं। तुम ऐसा ही मुझे स्वीकार कर लो। अशुद्ध आदमी की धारणा है कि तुम ऐसे ही स्वीकार कर लो, ताकि सम्बन्ध जुड़ जाए। एक दफा सम्बन्ध जुड़ जाय और मैं तुम्हारी नाव में सवार हो जाऊं, फिर तुम जहां भी ले जाओगे, चलूंगा। लेकिन अभी मेरी मर्जी की नाव बन जाओ।

दोनों ही तरह घटना घटती है, जो अपनी सब धारणाओं को गिरा देगा, उसके लिए कोई नाव की जरूरत नहीं, उसे उस पार जाने की भी कोई जरूरत नहीं। लेकिन जिसे अपनी धारणाओं से उस पार जाना है, उसके लिए बड़ा कठिन है। जिसको बदलना है उसके ही द्वारा उसे अपने में बदलाहट लाना बड़ा कठिन है। जैसे बीमार अपना इलाज करे, डाक्टर भी बीमार हो जाता है तो दूसरे डाक्टर के पास जाता है क्योंकि खुद का इलाज करने में एक घबड़ाहट होती है। दूसरे का इलाज करने में तो एक दूरी होती है, तो इलाज आसान होता है। बड़े से बड़ा सर्जन भी अपना आपरेशन नहीं करेगा। राग बीच में आता है।

तो अपने को ही बदलना हो तो अपने से तो बहुत राग है इसलिए भक्त कहता है कि अपने से संभव नहीं कि हम अपने को बदल लें। हम तो जैसे हैं—ऐसे हैं। बुरे-भले जैसे हैं—हैं।

इन दोनों मार्गों में साफ होना जरूरी है, नहीं तो आदमी दोनों में डोलता रहता है। दोनों के बीच कोई मार्ग नहीं है। या तो स्पष्ट समझ लेना कि मुझे खुद ही बदलना है, तब फिर किसी परमात्मा को, किसी गुरू को, बीच में लाने की जरूरत नहीं है, कितनी ही हो लम्बी यात्रा और कितने ही

अनन्त युग लगें, लड़ते रहना, यह भी बुरा नहीं है। यह भी मनुष्य की गरिमा के अनुकूल है।

लेकिन अगर लगता हो कि ये लड़ाई लम्बी है और हम चुक जायेंगे, तब फिर व्यर्थ लड़ना नहीं। सीधा इसी क्षण छोड़ देना, यह मनुष्य की गरिमा के अनुकूल है। क्योंकि, वही समर्पण भी कर पाता है जो कि कम से कम अपना इतना मालिक है कि छोड़ सके। आप वही छोड़ सकते हैं जिसके आप मालिक हैं। ये दो रास्ते हैं, इनमें समझौता कोई नहीं।

इनमें से जो ठीक-ठीक चुन लेता है अपने अनुकूल रास्ता, वो पहुंच जाता है, व्यर्थ भटकाव से बच जाता है।

● संकलन : *अरविन्दकुमार*, जबलपुर

भगवान रजनीश साहित्य

नए प्रकाशन

[१]	ताओ उपनिषद् भाग २	४०-००
[२]	कृष्ण मेरी दृष्टि में	४०-००
[३]	गीता दर्शन अध्याय ४	३०-००
[४]	समाजवाद अर्थात आत्मघात	६-००
[५]	ज्योतिशिखा (संयुक्त समापन अंक)	४-००

○

जीवन जागृति केन्द्र

३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड, बम्बई–९
फोन : ३२७११८

एक विचार : दो विचारक

"एक एक आदमी का अपना धर्म हो"

—स्वामी विवेकानन्द

धर्म एक लम्बी और धीमी प्रक्रिया है। इस मामले में हम सब बच्चे हैं। भले ही हम उम्र में बड़े हों और विश्व की तमाम पुस्तकें पढ़ रक्खी हों, किन्तु हम सब आध्यात्मिक रूप से बच्चे ही हैं। हमने शास्त्र और सिद्धांत पढ़े हैं, लेकिन जीवन में किसी भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। अब हमें आरम्भ से शुरू करना होगा, आकार और शब्दों से, प्रार्थना और नियमों से और ये आरम्भिक मार्ग सहस्त्रों होंगे। एक ही मार्ग सबों के लिए उपयुक्त होगा, यह जरूरी नहीं है। कुछ लोगों को मूर्ति से लाभ हो सकता है, कुछ लोगों को अपने भीतर मस्तिष्क में। जो आदमी उसे भीतर रखता है, वह कहता है—"मैं श्रेष्ठ आदमी हूं। जब मूर्ति भीतर है, सब ठीक है। जब वह बाहर होती है, तब मूर्ति-पूजा है। मैं इसके विरुद्ध युद्ध करूंगा (या लड़ूंगा)।" जब एक आदमी चर्च या मंदिर के रूप में मूर्ति की स्थापना करता है तब वह सोचता है कि यह पुनीत है, लेकिन जब वह मनुष्य के रूप में होती है, तब वह उसका विरोध करता है।

तो अनेक आकार हैं जिनके द्वारा मन यह प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करेगा। और फिर एक-एक कदम सत्व-ज्ञान की ओर बढ़ेगा। फिर से वही एक मार्ग सबके लिए नहीं होगा। एक मार्ग होगा जो आपको उपयुक्त होगा और दूसरा होगा जो किसी और को ठीक लगेगा। सभी मार्ग यद्यपि एक ही मंजिल को ले जाएंगे, किन्तु वे सभी के लिए उपयुक्त होंगे ऐसा नहीं है। ऐसी गल्ती हम प्रायः यहां किया करते हैं। मेरा आदर्श आपको ठीक नहीं लगता फिर मैं उसे आप पर क्यों जबरदस्ती लादूं? चर्च निर्मित करने का

मेरा तरीका या स्तोत्रों का पठन आपको उपयुक्त नहीं लगता, फिर वह आप पर मैं जबरदस्ती क्यों थोपूं ? जाइये संसार में और आपको हर बेवकूफ यही कहेगा कि उसका रास्ता ही ठीक है, बाकी सब रास्ते पिशाचों के हैं, और वही एक निर्णायक पुरुष है जो जगत में उत्पन्न हुआ है। किन्तु सत्य में (सच्चाई ये है कि) ये सभी मार्ग अच्छे और सहायक हैं। जैसे मानव स्वभाव में विभिन्न प्रकार हैं, उसी तरह जरूरी है कि उतनी ही संख्या में धर्म में भी विलक्षणता हो। यदि जगत में बीस मार्ग हों तो बहुत अच्छा, यदि चार सौ हों तो और भी अच्छा—उनमें से चुनने के लिए अधिक संख्या होगी (या चुनने में अधिक सहूलियत होगी)। इसलिए वस्तुतः हमें प्रसन्न होना चाहिए यदि धर्मों और धार्मिक विचारों की अधिकता होती है, क्योंकि फिर वे सब मनुष्यों का समावेश और मनुष्य की सहायता कर सकेंगे।

प्रभु से प्रार्थना करो कि धर्म तब तक बहुगुणित होता जाये, जब तक कि प्रत्येक मनुष्य का स्वयं का धर्म न हो जाये, अन्य किसी के धर्म से एकदम पृथक। अंतिम बात (या निर्णायक विचार) ये है कि मेरा धर्म न आपका हो सकता है, न आपका मेरा। यद्यपि ध्येय और मंजिल एक है, तथापि अपने अपने मन की प्रवृत्तियों के अनुसार प्रत्येक को पृथक-पृथक मार्ग अपनाने होंगे। और यद्यपि ये मार्ग अनेक हैं, पर वे सभी सच्चे हैं, क्योंकि वे उसी एक मंजिल पर ले जाते हैं। ऐसा नहीं हो सकता है कि एक सच हो और शेष नहीं। □

● "हर आदमी अपनी ही पगडंडी से चलता है"

—भगवान श्री रजनीश

हर मार्ग की अपनी शुद्धता है, प्योरिटी है। और बड़े से बड़ा अन्याय जो हम कर सकते हैं, वह किसी मार्ग की शुद्धता को नष्ट करना है। हर मार्ग पूरा है। पूरे का अर्थ यह है कि उससे मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। दूसरे मार्ग की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे मार्ग से नहीं पहुंचा जा सकता, दूसरा मार्ग भी उतना ही पूरा है उससे भी पहुंचा जा सकता है। आप मार्गों को मिलाने की बजाय, यही सोचना कि आप कहां खड़े हैं। कहां से आपके लिए निकटतम मार्ग मिल सकता है। फिर दूसरे को भूलकर भी मत सुनना।

हम बड़े अजीब लोग हैं हम इसकी फिकर ही नहीं करते कि कौन कहां खड़ा है।

एक मित्र हैं, उनकी पत्नी का भाव है—भक्ति का, समर्पित होने का छोड़ देने का—परमात्मा के चरणों में। मित्र का भाव नहीं है, उनका भाव है—अपने को शुद्ध करने का, रूपांतरित करने का, अपने को बदलने का। ठीक है, लेकिन वे मित्र अपनी पत्नी को भी भक्ति में नहीं जाने देते, क्योंकि वे मानते हैं कि वे जो कहते हैं, वही ठीक है। (उनके लिए ठीक है वह, उनकी पत्नी के लिए ठीक नहीं है।) लेकिन जो पति के लिए ठीक है वह पत्नी के लिए भी ठीक होना चाहिये, ऐसी उनकी धारणा है। अगर कल उनकी पत्नी भी उन पर जोर देने लगे कि तुम भी चलो मन्दिरों में नाचो, कीर्तन करो और गाओ, तो मैं कहूंगा कि वह भी गलती कर रही है। क्योंकि जो उसके लिए ठीक है, वही उसके पति के लिए भी ठीक है—ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है।

दूसरे पर कभी भी मत थोपना—अपना ठीक होना, क्योंकि आपको पता नहीं कि दूसरा कहां खड़ा है। आप जहां खड़े हैं, अपना रास्ता आप चुन लेना। दूसरा जहां चल रहा है, उसे चलने देना।

अक्सर बहुत लोग दूसरों के रास्ते पर बड़ी बाधाएं उपस्थित करते हैं उसका कारण है कि वे समझ ही नहीं पाते कि कोई दूसरा रास्ता भी हो सकता है। हम सबको ऐसा ख्याल और भी पैदा हो गया है कि सत्य का मार्ग भी एक है, यह बिल्कुल गलत है। सत्य एक है, सौ प्रतिशत ठीक। सत्य का मार्ग एक है, सौ प्रतिशत गलत।

सत्य के मार्ग अनन्त हैं—अनेक हैं। असल में जितने पहुंचने और चलने वाले लोग हैं, उतने मार्ग हैं। हर आदमी अपनी ही पगडंडी से चलता है। और अस्तित्व की यात्रा में हमने अलग-अलग चित्त निर्मित कर लिये हैं। जन्मों-जन्मों में हम सबके पास अलग-अलग भाव-दशा निर्मित हो गई है। हम उससे ही चल सकते हैं।

दूसरे के मार्ग पर चलने का कोई उपाय ही नहीं है। जैसे दूसरे के पैरों से चलने का कोई उपाय नहीं है, वैसे दूसरे के मार्ग पर भी चलने का कोई उपाय नहीं है। और जब एक एक दूसरे को लोग अपने मार्गों पर घसीटते हैं तो पंगु कर देते हैं, उनके पैर काट डालते हैं। बहुत हिंसा होती है ऐसे, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आती।

□ प्रस्तोता : *साधु आलोक आनन्द*, बम्बई

तुलसी मानस प्रकाशन

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : २–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : २–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७३ ७–५०
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. इसज्ञान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २–००
२१. चिंता और निश्चितता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ०–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात ३–००
(आध्यात्मिक उपन्यास)
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ५–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

★ भगवान रजनीश आश्रम ★

[१७, कोरेगांव पार्क, पूना–१ (महा०) ○ टेलीफोन : २२८४५]

भगवान श्री के अमृत मार्ग निर्देशन और सान्निध्य में

✠ कार्यक्रम ✠

● २१ अगस्त से १० सितम्बर ७४ तक, प्रतिदिन सुबह ८-३० बजे से पूज्य भगवान के अंग्रेजी में प्रवचन। विषय : *जीसस क्राइस्ट।*

प्रवेश : प्रति व्यक्ति ५ रु० दान-पत्र द्वारा।

● ११ सितम्बर से २० सितम्बर ७४ तक

समाधि साधना शिविर ○ *(हिन्दी भाषा में)*

प्रवचन विषय : *शिव सूत्र* (हिन्दी में)

[नोट—पूज्य भगवान श्री शिविर में केवल सुबह ८-३० से ९-४५ तक ही प्रवचन के मध्य अपना अमृत सान्निध्य लाभ देंगे।]

शिविर के अन्य कार्यक्रम :

सक्रिय ध्यान, टेप्ड प्रवचन प्रसारण, कीर्तन ध्यान, सूफी दरवेश नृत्य।

प्रवेश शुल्क	:	१००।- रु०
आवास एवं भोजन शुल्क	:	१५०।- रु०

☐ विस्तृत जानकारी एवं प्रवेश हेतु उपर्युक्त पते पर मा योग लक्ष्मी से सम्पर्क करें।